नव-संन्यास क्या?
(सात प्रवचन एवं 39 पत्र संकलन)

अनुक्रम

1. नव-संन्यास का सूत्रपात..3

2. संन्यासः नयी दिशा, नया बोध...18

3. संन्यास और संसार...23

4. संन्यास के फूलः संसार की भूमि में..34

5. आनंद व अहोभाव में डूबा हुआ नव-संन्यास...44

6. संन्यास का एक नया अभियान...55

7. सावधिक संन्यास की धारणा..63

8. पत्र-पाथेय...69

आमुख

एक संन्यास है जो इस देश में हजारों वर्ष से प्रचलित है, जिससे हम सब भलीभांति परिचित हैं। उसका अभिप्राय कुल इतना है कि आपने घर-परिवार छोड़ दिया, भगवे वस्त्र पहन लिए, चल पड़े जंगल की ओर। वह संन्यास तो त्याग का दूसरा नाम है, वह जीवन से भगोड़ापन है, पलायन है। और एक अर्थ में आसान भी है- अब है कि नहीं, लेकिन कभी अवश्य आसान था। भगवे वस्त्रधारी संन्यासी की पूजा होती थी। उसने भगवे वस्त्र पहन लिए, उसकी पूजा के लिए इतना पर्याप्त था। वह दरअसल उसकी नहीं, उसके वस्त्रों की ही पूजा थी। वह संन्यास इसलिए भी आसान था कि आप संसार से भाग खड़े हुए तो संसार की सब समस्याओं से मुक्त हो गए। क्योंकि समस्याओं से कौन मुक्त नहीं होना चाहता? लेकिन जो लोग संसार से भागने की अथवा संसार को त्यागने की हिम्मत न जुटा सके, मोह में बंधे रहे, उन्हें त्याग का यह कृत्य बहुत महान लगने लगा, वे ऐसे संन्यासी की पूजा और सेवा करते रहे और संन्यास के नाम पर परनिर्भरता का यह कार्य चलता रहाः संन्यासी अपनी जरूरतों के लिए संसारी पर निर्भर रहा और तथाकथित त्यागी भी बना रहा। लेकिन ऐसा संन्यास आनंद न बन सका, मस्ती न बना सका। दीन-हीनता में कहीं कोई फ्रुल्लता होती है? परजीवी कभी प्रमुदित हो सकते हैं? धीरे-धीरे संन्यास पूर्णतः सड़ गया। संन्यास से वे बांसुरी के गीत खो गए जो भगवान श्रीकृष्ण के समय कभी गूंजे होंगे- संन्यास के मौलिक रूप में। अथवा राजा जनक के समय संन्यास ने जो गहराई छुई थी, वह संसार में कमल की भांति खिलकर जीनेवाला संन्यास नदारद हो गया। वर्तमान समय में ओशो ने सम्यक संन्यास को पुनरुज्जीवित किया है। ओशो ने पुनः उसे बुद्ध का ध्यान, कृष्ण की बांसुरी, मीरा के घुंघरू और कबीर की मस्ती दी है। संन्यास पहले कभी भी इतना समृद्ध न था जितना आज ओशो के संत्पर्श से हुआ है। इसलिए यह नव-संन्यास है। इस अनूठी प्रवचनमाला के माध्यम से संन्यास के अभिनव आयाम में आपको निमंत्रण है।

नव-संन्यास क्या?
पहला प्रवचन

नव-संन्यास का सूत्रपात

संन्यास मेरे लिए त्याग नहीं, आनंद है। संन्यास निषेध भी नहीं है, उपलब्धि है। लेकिन आज तक पृथ्वी पर संन्यास को निषेधात्मक अर्थों में ही देखा गया है- त्याग के अर्थों में, छोड़ने के अर्थों में- पाने के अर्थ में नहीं। मैं संन्यास को देखता हूं पाने के अर्थ में। निश्चित ही जब कोई हीरे-जवाहरात पा लेता है तो कंकड़-पत्थरों को छोड़ देता है। लेकिन कंकड़-पत्थरों को छोड़ने का अर्थ इतना ही है कि हीरे-जवाहरातों के लिए जगह बनानी पड़ती है। कंकड़-पत्थरों का त्याग नहीं किया जाता। त्याग तो हम उसी बात का करते हैं जिसका बहुत मूल्य मालूम होता है। कंकड़-पत्थर तो ऐसे छोड़े जाते हैं जैसे घर से कचरा फेंक दिया जाता है। घर से फेंके हुए कचरे का हम हिसाब नहीं रखते कि हमने कितना कचरा त्याग दिया। संन्यास अब तक लेखा-जोखा रखता रहा है- उस सबका, जो छोड़ा जाता रहा है। मैं संन्यास को देखता हूं उस भाषा में, उस लेखे-जोखे में, जो पाया जाता है। निश्चित ही इसमें बुनियादी फर्क पड़ेगा। यदि संन्यास आनंद है, यदि संन्यास उपलब्धि है, यदि संन्यास पाना है, विधायक है, पॉजिटिव है तो संन्यास का अर्थ विराग नहीं हो सकता- तो संन्यास का अर्थ उदासी नहीं हो सकता- तो संन्यास का अर्थ जीवन का विरोध नहीं हो सकता। संन्यास का अर्थ होगा, जीवन में अहोभाव! तब तो संन्यास का अर्थ होगा, उदासी नहीं, फ्रुल्लता! तब तो संन्यास का अर्थ होगा, जीवन का फैलाव, विस्तार, गहराई, सिकुड़ाव नहीं। अभी तक जिसे हम संन्यासी कहते हैं वह अपने को सिकोड़ता है, सबसे तोड़ता है, सब तरफ से अपने को बंद करता है। मैं उसे संन्यासी कहता हूं, जो सबसे अपने को जोड़े, जो अपने को बंद ही न करे, खुला छोड़ दे। निश्चित ही इसके और भी अर्थ होंगे। जो संन्यास सिकोड़नेवाला है वह संन्यास बंधन बन जाएगा, वह संन्यास कारागृह बन जाएगा, वह संन्यास स्वतंत्रता नहीं हो सकता। और जो संन्यास स्वतंत्रता नहीं है वह संन्यास कैसे हो सकता है? संन्यास की आत्मा तो परम स्वतंत्रता है। इसलिए मेरे लिए संन्यास की कोई मर्यादा नहीं, कोई बंधन नहीं। मेरे लिए संन्यास का कोई नियम नहीं, कोई अनुशासन नहीं। मेरे लिए संन्यास की कोई डिसिप्लिन नहीं है, कोई अनुशासन नहीं है। मेरे लिए संन्यास व्यक्ति की परम विवेक में परम स्वतंत्रता की सद्भावना है। उस व्यक्ति को मैं संन्यासी कहता हूं जो परम स्वतंत्रता में जीने का साहस करता है। नहीं कोई बंधन ओढ़ता, नहीं कोई व्यवस्था ओढ़ता, नहीं कोई अनुशासन ओढ़ता। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं है कि उच्छृंखल हो जाता है। इसका यह मतलब नहीं कि वह स्वच्छंद हो जाता है। असलियत तो यह है कि जो आदमी परतंत्र है वही उच्छृंखल हो सकता है। और जो आदमी परतंत्र है, बंधन में बंधा है वह स्वच्छंद हो सकता है। जो स्वतंत्र है वह तो कभी स्वच्छंद होता ही नहीं। उसके स्वच्छंद होने का उपाय नहीं। अतीत के संन्यास से मैं भविष्य के संन्यास को भी तोड़ता हूं। और मैं समझता हूं कि अतीत के संन्यास की जो आज तक व्यवस्था थी वह मरणशैया पर पड़ी है- मर ही गयी है। उसे हम ढो रहे हैं, वह भविष्य में बच नहीं सकती। लेकिन संन्यास ऐसा फूल है जो खो नहीं जाना चाहिए। वह ऐसी अद्भुत उपलब्धि है जो विदा नहीं हो जानी चाहिए। वह बहुत अनूठा फूल है जो कभी-कभी खिलता रहा है। ऐसा भी हो सकता है कि हम उसे भूल ही जाएं, खो ही दें। पुरानी व्यवस्था में बंधा हुआ वह मर सकता है। इसलिए संन्यास को नए अर्थ, नए उद्भव देने जरूरी हो गए हैं। संन्यास तो बचना ही चाहिए। वह तो जीवन की गहरी से गहरी संपदा है। लेकिन अब कैसे बचायी जा सकेगी। उसे बचाए जाने के लिए कुछ मेरे ख्याल में है, मैं आपको कहता हूं। पहली बात तो मैं आपसे यह कहता हूं कि बहुत दिन हमने संन्यासी को संसार से तोड़कर देख लिया। इससे दोहरे नुकसान हुए। संन्यासी संसार से टूटता है तो दरिद्र हो जाता है, बहुत गहरे अर्थों में दरिद्र हो जाता है। क्योंकि जीवन के अनुभव की सारी संपदा संसार में है। जीवन के सुख-दुःख का, जीवन के संघर्ष, जीवन की सारी गहनताओं का, जीवन-रसों का सारा

अनुभव तो संसार से है और जब हम किसी व्यक्ति को संसार से तोड़ देते हैं तो वह "हाट हाउस प्लांट" हो जाता है। खुले आकाश के नीचे खिलनेवाला फूल नहीं रह जाता। वह बंद कमरे में, कृत्रिम हवाओं में, कृत्रिम गर्मी में खिलनेवाला फूल हो जाता है- कांच की दीवारों में बंद! उसे मकान के बाहर लाएं तो मुर्झा जाएगा, मर जाएगा। संन्यासी अब तक "हाट हाउस प्लांट" हो गया है। लेकिन संन्यास भी कहीं बंद कमरों में खिल सकता है? उसके लिए खुला आकाश चाहिए, रात का अंधेरा चाहिए, दिन का उजाला चाहिए, चांद तारे चाहिए, पक्षी चाहिए, खतरे चाहिए, वह सब चाहिए। संसार से तोड़ कर हमने संन्यासी को भारी नुकसान पहुंचाया है। संन्यासी की आंतरिक समृद्धि क्षीण हो गयी है। यह बड़े मजे की बात है कि साधारणतः जिन्हें हम अच्छे आदमी कहते हैं उनकी जिंदगी बहुत समृद्ध, रिच नहीं होती, उनकी जिंदगी में बहुत अनुभवों का भंडार नहीं होता। इसलिए उपन्यासकार कहते हैं कि अच्छे आदमी की जिंदगी पर कोई कहानी नहीं लिखी जा सकती। कहानी लिखनी हो तो बुरे आदमी को पात्र बनाना पड़ता है। एक बुरे आदमी की कहानी होती है। अगर हम बता सकें कि एक आदमी जन्म से मरने तक बिल्कुल अच्छा है तो इतनी ही कहानी काफी है। और कुछ बताने को नहीं रह जाता। संन्यासी को संसार से तोड़कर हम अनुभव से तोड़ देते हैं। अनुभव से तोड़कर हम उसे एक तरह की सुरक्षा तो दे देते हैं, लेकिन एक तरह की दरिद्रता भी दे देते हैं। मैं संन्यासी को संसार से जोड़ना चाहता हूं। मैं ऐसे संन्यासी देखना चाहता हूं जो दुकान पर बैठे हों, दफ्तर में काम भी कर रहे हों, खेत पर मेहनत भी कर रहे हों- जो जिंदगी की पूरे सघनता में खड़े हों- हार नहीं गए हों, भगोड़े न हों, एस्केपिस्ट न हों। पलायन न किया हो, जिंदगी के पूरे सघन बाजार में खड़े हों, भीड़ में, शोरगुल में खड़े हों और फिर भी संन्यासी हों। तब उनके संन्यास का क्या मतलब होगा? अगर एक स्त्री संन्यासिनी होती है और पत्नी है तो अब तक मतलब होता था कि वह भाग जाए जिंदगी से- छोड़कर बच्चों को, पति को। अगर पति है तो छोड़ जाएगा घर को। घर छोड़कर भाग जाएगा। मेरे लिए ऐसे संन्यास का कोई अर्थ नहीं है। मैं तो मानता हूं कि अगर एक पति संन्यासी होता है तो जहां है वहीं हो, भागे नहीं। संन्यास उसके जीवन में वहीं लिखे। लेकिन तब क्या करेगा वह? भागने में तो रास्ता दिखता था कि भाग गए तो बच गए। अब क्या करेगा? अब उसे करने को क्या होगा? वह पति भी होगा, बाप भी होगा, दुकानदार भी होगा, नौकर भी होगा, मालिक भी होगा, हजार संबंधों में होगा। जिंदगी का मतलब ही अंतर्संबंधों का जाल है। वह यहां क्या करेगा? भाग जाता था तो बड़ी सहूलियत थी क्योंकि वह दुनिया ही हट गयी जहां कुछ करना पड़ता था। वह बैठ जाता था एक कोने में- जंगल में, एक गुफा में। सूखता था वहां, सिकुड़ता था वहां। यहां क्या करेगा? यहां संन्यास का क्या अर्थ होगा? एक अभिनेता मेरे पास आया था। नया-नया अभिनेता है। अभी- अभी फिल्मों में आया है। वह मुझसे पूछने आया था कि मुझे भी कोई सूत्र मेरी डायरी पर लिख दें, जो मेरे काम आ जाए। तो उसे मैंने लिखा कि अभिनय ऐसे करो जैसे वह जीवन हो। और जियो ऐसे जैसे वह अभिनय हो। संन्यासी का मेरे लिए यही अर्थ है। जीवन की सघनता में खड़े होकर अगर कोई संन्यास के फूल को खिलाना चाहता है, तो एक ही ढंग हो सकता है कि वह कर्ता न रह जाए- भोक्ता न रह जाए, अभिनेता हो जाए। साक्षी हो जाए, देखे, करे, लेकिन कहीं भी बहुत गहरे में बंधे न! गुजरे नदी से, लेकिन उसके पांव को पानी न छुए। नदी से गुजरना तो मुश्किल है कि पांव को पानी न छुए, लेकिन संसार से ऐसे गुजरना संभव है कि संसार न छुए। अभिनय को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। और आश्चर्य तो यह है कि जितना अभिनय हो जाए जीवन उतना कुशल हो जाता है, उतना सहज हो जाता है, उतना चिंतामुक्त हो जाता है। कोई मां, अगर मां होने में कर्ता न बन जाए, साक्षी रह सके और जान सके इतनी छोटी-सी बात कि जिस बच्चे को वह पाल रही है वह बच्चा उससे आया तो जरूर है, लेकिन उसका ही नहीं है। उससे पैदा तो हुआ है, लेकिन उसी ने पैदा नहीं किया है। वह उसके लिए द्वार से ज्यादा नहीं है और जहां से वह आया है और जिससे वह आया है और जिसके द्वारा वह जिएगा, और जिसमें वह लौट जाएगा, उसका ही है। तो मां को कर्ता होने की अब जरूरत नहीं रह गयी। अब वह साक्षी हो सकती है। अब वह मां होने का अभिनय कर सकती है। कभी एक छोटा-सा प्रयोग करके देखें- चौबीस घंटे के लिए तय कर लें कि चौबीस घंटे अभिनय

करूंगा। जब मुझे कोई गाली देगा तो मैं क्रोध न करूंगा, क्रोध का अभिनय करूंगा। और जब कोई मेरी प्रशंसा करेगा तो मैं प्रसन्न न होऊंगा, प्रसन्न होने का अभिनय करूंगा। एक चौबीस घंटे का प्रयोग आपकी जिंदगी में नए दरवाजे खोल देगा। आप हैरान हो जाएंगे कि मैं नाहक परेशान हो रहा था। जो काम अभिनय से ही हो सकता था, उसे मैं नाहक कर्ता बनकर दुःख झेल रहा था। और जब सांझ आप दिनभर के बाद सोएंगे तो तत्काल गहरी नींद में चले जाएंगे। क्योंकि जो कर्ता नहीं रहा है उसकी कोई चिंता नहीं है, उसका कोई तनाव नहीं है, उसका कोई बोझ नहीं है। सारा बोझ कर्ता होने का बोझ है। संन्यास को मैं घर-घर पहुंचा देना चाहता हूं तो ही संन्यास बचेगा। लाखों संन्यासी चाहिए। दो-चार संन्यासियों से काम नहीं होगा। और जैसा मैं कह रहा हूं, उसी आधार पर लाखों संन्यासी हो सकते हैं। संसार से तोड़कर आप ज्यादा संन्यासी नहीं जगत में ला सकते, क्योंकि कौन उसके लिए काम करेगा, कौन उनके लिए भोजन जुटाएगा, कौन उनके लिए कपड़े जुटाएगा? एक छोटी-सी दिखाऊ संख्या पाली-पोसी जा सकती है। लेकिन बड़े विराट पैमाने पर संन्यास संसार में नहीं आ सकता। सिर्फ दो- चार हजार संन्यासी एक मुल्क झेल सकता है। ये संन्यासी भी दीन हो जाते हैं, ये संन्यासी भी निर्भर हो जाते हैं, ये संन्यासी परवश हो जाते हैं और इनका विराट्, व्यापक प्रभाव नहीं हो सकता। अगर जगत में बहुत व्यापक प्रभाव चाहिए संन्यास का, जो कि जरूरी है, उपयोगी है, अर्थपूर्ण, आनंदपूर्ण है तो हमें धीरे-धीरे ऐसे संन्यास को जगह देनी पड़ेगी जिसमें से तोड़कर भागना अनिवार्यता न हो, जिसमें जो जहां है वह वहीं संन्यासी हो सके। वहीं वह अभिनय करे और वहीं वह साक्षी हो जाए, जो हो रहा है उसका साक्षी हो जाए। तो एक तो संन्यास को घर से, दुकान से, बाजार से जोड़ने का मेरा ख्याल है। अद्भुत और मजेदार हो सकेगी वह दुनिया, अगर हम बना सकें जहां दुकानदार संन्यासी हो। स्वभावतः वैसा दुकानदार बेईमान होने में बड़ी कठिनाई पाएगा। जब अभिनय ही कोई कर रहा हो तो बेईमान होने में बड़ी कठिनाई पाएगा। और जब कोई साक्षी बना हो तो फिर बेईमान होने में बड़ी कठिनाई पाएगा। संन्यासी अगर दफ्तर में क्लर्क हो, चपरासी हो, डॉक्टर हो, वकील हो तो हम इस दुनिया को बिल्कुल बदल डाल सकते हैं। तो एक तो संसार से टूटकर संन्यासी दीन हो जाता है और संसार का भारी नुकसान होता है, संसार भी दीन हो जाता है। क्योंकि उसके बीच जो श्रेष्ठतम फूल खिल सकते थे वे हट जाते हैं, वे बगिया के बाहर हो जाते हैं। और बगिया उदास हो जाती है। इसलिए संन्यास का एक जगत्-व्यापी आंदोलन जरूरी है। जिसमें हम धीरे-धीरे घर में, द्वार-द्वार में, बाजार में, दुकान में संन्यासी को जन्म दे सकें। वह मां होगी, पति होगा, पत्नी होगी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह जो भी होगा वही होगा। सिर्फ उसके देखने की दृष्टि बदल जाएगी। उसके लिए जिंदगी अभिनय और लीला हो जाएगी, काम नहीं रह जाएगा। उसके लिए जिंदगी एक उत्सव हो जाएगी, और उत्सव होते ही सब बदल जाता है। दूसरी एक मेरी और दृष्टि है, वह आपको कहूं। वह मेरी दृष्टि हैः पीरियाडिकल रिनन्सिएशन की, सावधिक संन्यास की। ऐसा मैं नहीं मानता हूं कि कोई आदमी जिंदगीभर संन्यासी होने की कसम ले। असल में भविष्य के लिए कोई भी कसम खतरनाक है। क्योंकि भविष्य के हम कभी भी नियंता नहीं हो सकते। वह भ्रम है। भविष्य को आने दें, वह जो लाएगा हम देखेंगे। जो साक्षी है वह भविष्य के लिए निर्णय नहीं कर सकता। निर्णय सिर्फ कर्ता कर सकता है। जिसको ख्याल है कि मैं करनेवाला हूं वह कह सकता है कि मैं जिंदगीभर संन्यासी रहूंगा। लेकिन सच में जो साक्षी है वह कहेगा, कल का तो मुझे कुछ पता नहीं, कल जो होगा, होगा! कल जो होगा उसे देखूंगा और जो होगा, होगा! कल के लिए कोई निर्णय नहीं ले सकता। और इसलिए संन्यास की एक और कठिनाई अतीत में हुई, वह थी जीवनभर के संन्यास की, आजीवन संन्यास की। एक आदमी किसी भाव-दशा में संन्यासी हो जाए और कल किसी भाव-दशा में जीवन में वापस लौटना चाहे, तो हमने लौटने का द्वार नहीं छोड़ा है खुला। संन्यास में हमने एंट्रेंस, प्रवेशद्वार तो रखा है, लेकिन एक्जिट, बाहर के लिए द्वार नहीं है। उसमें भीतर जा सकते हैं, बाहर नहीं जा सकते। और ऐसा स्वर्ग भी नरक हो जाता है जिसमें बाहर लौटने का दरवाजा न हो- परतंत्रता बन जाता है, कारागृह हो जाता है। आप कहेंगे नहीं, कोई संन्यासी लौटना चाहे तो हम क्या करेंगे, लौट सकता

है। लेकिन आप उसकी निंदा करते हैं, अपमान करते हैं- निंदा, कंडमनेशन है उसके पीछे। और इसलिए हमने एक तरकीब बना रखी है कि जब कोई संन्यास लेता है तो उसका भारी शोरगुल मचाते हैं। जब कोई संन्यास लेता है तो बहुत बैंडबाजा बजाते हैं। जब कोई संन्यास लेता है तो बहुत फूल-मालाएं पहनाकर बड़ी प्रशंसा, बड़ा सम्मान, बड़ा आदर देते हैं। जैसे कोई बहुत बड़ी घटना घट रही हो, ऐसा हम उपद्रव करते हैं। पर इस उपद्रव का दूसरा हिस्सा है, वह उस संन्यासी को पता नहीं कि अगर वह कल लौटा तो जैसे फूल-मालाएं फेंकी गयीं, वैसे पत्थर और जूते भी फेंके जाएंगे। और वे ही लोग होंगे फेंकनेवाले, कोई दूसरा आदमी नहीं होगा। असल में इन लोगों ने फूल-मालाएं पहनाकर उससे कहा कि अब सावधान, अब लौटना मत। अब जितना आदर किया है उतना ही अनादर प्रतीक्षा करेगा। यह बड़ी खतरनाक बात है। इसके कारण न मालूम कितने लोग जो संन्यास का आनंद ले सकते हैं, वह नहीं ले पाते। वह कभी निर्णय नहीं कर पाते कि "जीवनभर के लिए"- जीवनभर का निर्णय बड़ी महंगी बात है, मुश्किल बात है! फिर हकदार भी हम नहीं हैं जीवनभर के निर्णय के लिए। तो मेरी दृष्टि है, कि संन्यास सदा ही सावधिक है- आप कभी भी वापस लौट सकते हैं। कौन बाधा डालने वाला है? संन्यास आपने लिया था। संन्यास आप छोड़ दें। आपके अतिरिक्त इसमें कोई और निर्णायक नहीं है। आप ही निर्णायक हैं। आपका ही निर्णय है। इसमें दूसरे की न कोई स्वीकृति है, न दूसरे का कोई संबंध है। संन्यास निजता है, मेरा निर्णय है। मैं आज लेता हूं, कल वापस लौटता हूं। न तो लेते वक्त आपकी अपेक्षा है कि सम्मान करें, न छोड़ते वक्त आपसे अपेक्षा है कि आप इसके लिए निंदा करें। आपका कोई संबंध नहीं है। संन्यास को हमने बड़ा गंभीर मामला बनाया हुआ था, इसलिए वह सिर्फ रुग्ण और गंभीर लोग ही ले पाते हें। संन्यास को बहुत गैर-गंभीर खेल की घटना बनाना जरूरी है। आपकी मौज है, संन्यास ले लिया है। आपकी मौज है, आप कल लौट जा सकते हैं। नहीं मौज है, नहीं लौटते हैं! जीवनभर रह जाते हैं, वह आपकी मौज है। इससे किसी का कोई लेना-देना नहीं है। फिर इसके साथ, यह भी मेरा ख्याल है कि अगर संन्यास की ऐसी दृष्टि फैलायी जा सके तो कोई भी आदमी जो वर्ष में एकाध दो महीने के लिए संन्यास ले सकता है वह एकाध दो महीने के लिए ले लेगा। जरूरी क्या है कि बारह महीने के लिए ले। वह दो महीने के लिए संन्यासी हो जाए, दो महीने संन्यास की जिंदगी को जिए, दो महीने के बाद वापस लौट जाए। यह बड़ी अद्भुत बात होगी। एक फकीर हुआ, उस फकीर के पास एक सम्राट गया। सूफी फकीर था। उस सम्राट ने कहा, मुझे भी परमात्मा से मिला दो। मैं भी बड़ा प्यासा हूं। उस फकीर ने कहा, तुम एक काम करो। कल सुबह आ जाओ। सम्राट कल सुबह आया। उस फकीर ने कहा, तुम सात दिन यहीं रुको। यह भिक्षा का पात्र हाथ में लो और रोज गांव में सात दिन तक भीख मांगकर लौट आना, यहां भोजन कर लेना, यहीं विश्राम कर लेना। सात दिन के बाद परमात्मा के संबंध में बात करेंगे। सम्राट बहुत मुश्किल में पड़ा। उसकी ही राजधानी थी। उसकी अपनी ही राजधानी में भिक्षा का पात्र लेकर भीख मांगना! उसने कहा कि अगर किसी दूसरे गांव में चला जाऊं तो! उस फकीर ने कहा नहीं, गांव तो यही रहेगा। अगर सात दिन भीख न मांग सको तो वापस लौट जाओ। फिर परमात्मा की बात मुझसे मत करना। सम्राट झिझका तो जरूर, लेकिन रुका। दूसरे दिन भीख मांगने गया बाजार में। सड़कों पर, द्वारों पर खड़े होकर उसने भीख मांगी। सात दिन उसने भीख मांगी। सात दिन बाद फकीर ने उसे बुलाया और कहा, अब पूछो। उसने कहा, मुझे कुछ भी नहीं पूछना है। मैं तो सोच भी नहीं सकता था कि सात दिन भिक्षा का पात्र फैलाकर मुझे परमात्मा दिखाई पड़ जाएगा। फकीर ने कहा, क्या हुआ तुम्हें? उसने कहा, कुछ भी नहीं हुआ। सात दिन भीख मांगने से मेरा अहंकार गल गया और पिघल गया और बह गया। मैंने तो कभी सोचा भी नहीं था कि जो सम्राट होकर नहीं पा सका, वह भिखारी होकर मिल सकता है। और जिस क्षण विनम्रता, ह्यूमिलिटी का भीतर जन्म होता है, उसी क्षण द्वार खुल जाते हैं। अब यह अद्भुत अनुभव की बात होगी कि कोई आदमी वर्ष में दो महीने के लिए, एक महीने के लिए संन्यासी हो जाए, फिर वापस लौट जाए, अपनी दुनिया में। इस दो महीने में संन्यास की जिंदगी के अनुभव उसकी संपत्ति बन जाएंगे। वे उसके साथ चलने लगेंगे। और अगर एक आदमी चालीस-पचास-साठ साल की उम्र तक दस-बीस बार थोड़े-थोड़े दिनों के लिए संन्यासी होता चला जाए तो फिर उसे संन्यासी होने

की जरूरत न रह जाएगी। वह जहां है वहीं धीरे-धीरे संन्यासी हो जाएगा। ऐसा भी मैं सोचता हूं कि हर आदमी को मौका मिलना चाहिए कि वह कभी संन्यासी हो जाए। और दो चार बातें, फिर आपको कुछ इस संबंध में पूछना हो तो आप पूछ सकते हैं।
अब तक जमीन पर जितने संन्यासी रहे वह किसी धर्म के थे। इससे बहुत नुकसान हुआ है। संन्यासी भी और "किसी धर्म का" होगा, यह बात ही बेतुकी है। कम-से-कम संन्यासी तो "सिर्फ धर्म का" होना चाहिए। वह न तो जैन हो, न ईसाई हो, न हिंदू हो। वह तो सिर्फ धर्म का हो। वह तो कम-से-कम "सर्व धर्मान परित्यज्य", वह तो कम से कम सर्व धर्म छोड़कर, निपट धर्म का हो जाए। यह बड़े मजे की बात होगी कि हम इस पृथ्वी पर एक ऐसे संन्यास को जन्म दे सकें जो धर्म का संन्यास हो- किसी विशेष संप्रदाय का नहीं। वह संन्यासी मस्जिद में भी रुक सके, वह मंदिर में भी रुक सके, वह गुरुद्वारे में भी ठहर सके। उसके लिए कोई पराया न हो, सब अपने हो जाएं। साथ ही ध्यान रहे, अब तक संन्यास सदा गुरु से बंधा रहा। कोई गुरु दीक्षा देता है। संन्यास कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे कोई दे सके। संन्यास ऐसी चीज है जो लेनी पड़ती है, देता कोई भी नहीं। या कहना चाहिए कि परमात्मा के सिवाय और कौन दे सकता है? अगर मेरे पास कोई आता है और कहता है कि मुझे दीक्षा दे दें, तो मैं कहता हूं कि मैं कैसे दीक्षा दे सकता हूं, मैं सिर्फ गवाह हो सकता हूं, विटनेस हो सकता हूं। दीक्षा तो परमात्मा से ले लो, दीक्षा तो परम सत्ता से ले लो, मैं गवाहभर हो सकता हूं, एक विटनेस हो सकता हूं कि मैं मौजूद था, मेरे सामने यह घटना घटी। इससे ज्यादा कुछ अर्थ नहीं होता। गुरु से बंधा हुआ संन्यास सांप्रदायिक हो ही जाएगा। गुरु से बंधा हुआ संन्यास मुक्ति नहीं ला सकता, बंधन ले आएगा। फिर यह संन्यासी करेगा क्या? ये संन्यासी तीन प्रकार के हो सकते हैं। एक- वे जिन्होंने सावधिक संन्यास लिया है, जो एक अवधि के लिए संन्यास लेकर आए हैं, जो दो महीने, तीन महीने संन्यासी होंगे, साधना करेंगे। एकांत में रह सकते हैं, फिर वापस जिंदगी में लौट जाएं। दूसरे- वे संन्यासी हो सकते हैं जो जहां हैं, वहां से इंचभर नहीं हटते, क्षणभर के लिए नहीं हटते, वहीं संन्यासी हो जाते हैं। और वहीं अभिनय और साक्षी का जीवन शुरू कर देते हैं। तीसरे- वे भी संन्यासी होंगे जो संन्यास के आनंद में इतने डूब जाते हैं कि न तो लौटने का उन्हें सवाल उठता, न ही उनके ऊपर कोई जिम्मेवारी है कि जिसकी वजह से उन्हें किसी के घर में बंधा हुआ रहना पड़े। न उन पर कोई निर्भर है, न उनके यहां वहां हट जाने से कहीं भी कोई पीड़ा और कहीं भी कोई दुःख और कहीं भी कोई अड़चन आती है। ऐसा जो तीसरा वर्ग होगा संन्यासियों का, यह तीसरा वर्ग ध्यान में जिए, ध्यान की खबरें ले जाए, ध्यान को लोगों तक पहुंचाए। मुझे ऐसा लगता है कि इस समय पृथ्वी पर जितनी ध्यान की जरूरत है उतनी और किसी चीज की नहीं है। और अगर हम पृथ्वी के एक बड़े मनुष्यता के हिस्से को ध्यान में लीन नहीं कर सके तो शायद आदमी ज्यादा दिन जिंदा नहीं रहेगा। आदमियत ज्यादा दिन बच नहीं सकती। आदमी समाप्त हो सकता है। इतना मानसिक रोग है, इतने पागलपन हैं, इतनी विक्षिप्तता है, इतनी राजनीतिक बीमारियां हैं कि उन सबके बीच आदमी बचेगा इसकी उम्मीद रोज कम होती जाती है। अगर इस बीच एक बड़े व्यापक पैमाने पर लाखों लोग ध्यान में नहीं डूब जाते तो शायद हम मनुष्य को नहीं बचा सकेंगे। और या हो सकता है, मनुष्य बच भी जाए तो सिर्फ यंत्र की भांति बचे क्योंकि मनुष्यता का जो भी श्रेष्ठ है वह सब खो जाएगा। इसलिए एक ऐसा वर्ग भी चाहिए युवकों का, युवतियों का, जिन पर कोई जिम्मेवारी न हो अभी- या वृद्धों का वर्ग जो जिम्मेवारी के बाहर जा चुके हों, जिनकी जिम्मेवारी समाप्त हो गयी हो, जो जिम्मेदारी पूरी कर चुके हों। उन युवकों का जिन्होंने अभी जिम्मेवारी नहीं ली है, उन वृद्धों का, जिनकी जिम्मेवारी जा चुकी है- इनका एक वर्ग चाहिए जो विराट पैमाने पर पृथ्वी को ध्यान में डुबाने में संलग्न हो जाए। जिस ध्यान के प्रयोग की मैं बात कर रहा हूं वह इतना आसान है, इतना वैज्ञानिक है कि अगर सौ लोग करें तो सत्तर प्रतिशत लोगों को तो होगा ही। सिर्फ शर्त "करने" की है और किसी पात्रता की कोई अपेक्षा नहीं है। सत्तर प्रतिशत लोगों को तो परिणाम होंगे ही। फिर जिस ध्यान की मैं बात कर रहा

हूं उसके लिए किसी धर्म की कोई पूर्व अपेक्षा नहीं है। किसी शास्त्र की कोई पूर्व अपेक्षा नहीं है, किसी श्रद्धा और किसी विश्वास की पूर्व अपेक्षा नहीं है। सीधे, जैसे आप हैं वैसे ही उस ध्यान में आप उतर सकते हैं। सीधा वैज्ञानिक प्रयोग है। आपसे यह भी अपेक्षा नहीं है कि आप श्रद्धा रखकर उतरें। इतनी ही अपेक्षा है कि एक हाईपोथेटिकल, परिकल्पनात्मक, जैसा एक वैज्ञानिक प्रयोग करता है यह जानने के लिए कि देखें होता है, या नहीं- इतना ही प्रयोग का भाव लेकर अगर आप ध्यान में उतरें तो भी हो जाएगा। और मुझे ऐसा लगता है कि एक चेन रिएक्शन, एक श्रृंखलाबद्ध ध्यान की प्रक्रिया सारी पृथ्वी पर फैलाई जा सकती है। और अगर एक व्यक्ति ध्यान को सीख ले और तय कर ले कि सात दिन न बीत पाएंगे तब तक वह एक व्यक्ति को कम-से-कम ध्यान सिखाएगा तो हम दस वर्ष में इस पूरी पृथ्वी को ध्यान में डुबा देंगे। इससे ज्यादा बड़े श्रम की जरूरत नहीं है। मनुष्य के जीवन में जो भी श्रेष्ठ खो गया है वह सब वापस लौट सकता है। और कोई कारण नहीं है कि कृष्ण फिर पैदा क्यों न हों, क्राइस्ट फिर क्यों न दिखाई पड़ें, बुद्ध फिर क्यों न हमारे पास हमारे निकट मौजूद हो जाएं- वही बुद्ध नहीं लौटेंगे, वहीं कृष्ण नहीं लौटेंगे। हमारी भीतर सारी क्षमताएं हैं, वह फिर प्रकट हो सकती हैं। इसलिए मैंने गवाह होने का तय किया है। इन तीन वर्गों में जो मित्र भी जाना चाहेंगे उनके लिए मैं गवाह रहूंगा। उनका गुरु नहीं रहूंगा। संन्यास उनका और परमात्मा के बीच का संबंध होगा। कोई उत्सव नहीं किया जाएगा संन्यास देने के लिए, नहीं तो फिर छोड़ते वक्त भी उल्टा उत्सव करना पड़ता है। इसे कोई गंभीर बात नहीं समझा जाएगा, यह कोई सीरियस अफेयर नहीं है। इसके लिए इतना परेशान और इतना चिंतित होने की जरूरत नहीं है। यह बड़ी सहज बात है। एक आदमी सुबह उठता है और उसके मन में आता है कि वह संन्यासी हो जाए, तो हो जाए! कठिनाई इसलिए नहीं है कि कमिटमेंट कोई लाइफ लांग नहीं है। कोई जिंदगीभर की बात नहीं है कि उसने तय कर लिया है तो अब जिंदगीभर उसे संन्यासी रहना है। अगर कल सुबह उसे लगता है कि नहीं, वापस लौटना है तो वह वापस लौट जाए। इसमें किसी दूसरे का कोई लेना-देना नहीं है। ये थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं। इस संबंध में कुछ भी आपको सवाल हों तो वह थोड़े से सवाल पूछ लें तो उनकी बात हो जाएगी।
गैरिक कपड़े पहनने का क्या मतलब होता है? कपड़े पहनने से कोई संन्यासी नहीं होता, लेकिन संन्यासी भी अपने ढंग से कपड़े पहनता है। कपड़े पहनने से कोई संन्यासी नहीं होता लेकिन संन्यासी के अपने कपड़े हो सकते हैं। कपड़े बड़ी साधारण चीज हैं, लेकिन एकदम व्यर्थ चीज नहीं है। आप क्या पहनते हैं, इसके बहुत से अर्थ हैं। आप क्यों पहनते हैं, इसके भी बहुत से अर्थ हैं। एक आदमी ढीले-ढाले कपड़े पहनता है। ढीले-ढाले कपड़े पहनने से कुछ फर्क नहीं पड़ता लेकिन एक आदमी ढीले-ढाले कपड़े क्यों चुनता है? और एक आदमी चुस्त कपड़े क्यों चुनता है? ये उस आदमी के सूचक होते हैं! अगर आदमी बहुत शांत है तो चुस्त कपड़े पसंद नहीं करेगा। चुस्त कपड़ों की पसंदगी इस बात की खबर देती है कि आदमी झगड़ालू हो सकता है, अशांत हो सकता है, उपद्रवी हो सकता है, कामुक हो सकता है। लड़ने के लिए ढीले कपड़े ठीक नहीं पड़ते। इसलिए सैनिक को हम ढीले कपड़े नहीं पहना सकते। सिर्फ साधु को पहना सकते हैं। सैनिक को चुस्त कपड़े ही पहनने चाहिए। काम चुस्त कपड़े का है। जहां वह जा रहा है वहां कपड़े इतने कसे होने चाहिए कि उसे पूरे वक्त लगता रहे कि वह अपने शरीर के बाहर छलांग लगा सकता है। पूरे वक्त लगता रहे कि वह जब चाहे तब शरीर के बाहर कूद सकता है। कपड़े इतने चुस्त होने चाहिए। ये कपड़े उसे लड़ने में सहयोगी हो जाते हैं। गैरिक वस्त्रों का भी उपयोग है। ऐसा नहीं कि गैरिक वस्त्रों के बिना कोई संन्यासी नहीं हो सकता। लेकिन गैरिक वस्त्रों का उपयोग है। और जिन्होंने वह खोजे थे उनके पीछे बहुत कारण थे। पहला कारण समझें। हम कभी छोटे-मोटे प्रयोग भी नहीं करते, इसलिए बड़ी कठिनाई होती है। सात रंगों की सात बोतलें ले लें और उनमें एक ही नदी का पानी भर दें। और सातों को सूरज की रोशनी में रख दें और आप बड़े हैरान हो जाएंगे। सात रंगों का कांच सात रंग के पानी पैदा कर देते हैं। पीले रंग की बोतल का पानी जल्दी सड़ जाएगा। वह ताजा नहीं रह सकता। लाल रंग की बोतल का पानी महीनेभर तक स्वच्छ रह जाएगा, सड़ेगा

नहीं। आप कहेंगे, क्या किया बोतल ने? कांच का रंग किरणों के आने-जाने में फर्क डाल रहा है। पीले रंग की बोतल पर और तरह की किरणें भीतर प्रवेश कर रही हैं, लाल रंग की बोतल पर और तरह की किरणें प्रवेश कर रही हैं, नीले रंग की बोतल पर और तरह की किरणें प्रवेश कर रही हैं। वह जो भीतर पानी है, वह उन किरणों को पी रहा है, वह उसका आहार बन रहा है। जिन लोगों ने संन्यास पर बहुत प्रयोग किए उन्होंने हजारों साल के लंबे प्रयोग के बाद बहुत तरह के कपड़ों में से गैरिक वस्त्र को चुना था। कई अनुभव हैं उसके पीछे। एक तो बहुत अद्भुत अनुभव यह है, जो लोग फिजिक्स को थोड़ा समझते हैं, उनको ख्याल में होगा कि जिस रंग का कपड़ा होता है, उस रंग की किरण हम से वापस लौट जाती है। आमतौर से हम उल्टा समझते हैं। आमतौर से हम समझते हैं कि जो कपड़ा लाल है, वह लाल होगा। असलियत यह नहीं है, असलियत उल्टी है। सूरज की किरणों में सात रंग छिपे होते हैं और जब सूरज की किरण किसी चीज पर पड़ती है, अगर आपको लाल कपड़ा दिखाई पड़ रहा है तो उसका मतलब यह है कि किरणों के छह रंग तो वह कपड़ा पी गया, केवल लाल रंग को उसने वापस लौटा दिया। आपको वही रंग दिखाई पड़ता है जो चीजें वापस लौटा देती हैं। नीले रंग की चीज का मतलब है कि नीले रंग की किरण वापस लौट गई। उसे उस चीज ने एब्जार्ब नहीं किया, उसने पिया नहीं। वह वापस छोड़ दी गई। वह किरण लौटकर आपकी आंख में पड़ती है इसलिए आपको चीज नीली दिखाई पड़ती है। और मजे की बात यह है कि वह चीज नीले रंग को पीती नहीं है। वह उसको छोड़ देती है। जिस रंग का कपड़ा आप पहन रहे हैं, उस रंग की किरण आपके भीतर प्रवेश नहीं करेगी। गैरिक वस्त्र बहुत सोचकर चुने गए। लाल रंग की किरण मनुष्य के चित्त में बहुत तरह की कामुकताओं को जन्म देती है। वह बहुत व्हाइटल है। लाल रंग की जो किरण है वह शरीर के भीतर प्रवेश करके मनुष्य की कामुकता, सेक्सुआलिटी को उभारती है। इसलिए गर्म मुल्क के लोग ज्यादा कामुक होते हैं। जितना गर्म मुल्क होगा, उतने लोग ज्यादा कामुक होंगे। इसलिए आप हैरान होंगे यह जानकर कि काम-सूत्र के मुकाबले की कोई किताब ठंडे मुल्कों में पैदा नहीं हुई। अरेबियन नाइट जैसी किताब ठंडे मुल्कों में पैदा नहीं हुई। गर्म मुल्क बहुत कामुक होते हैं। सूरज की तपती हुई तेज किरणें हैं वह सब तपते हुए शरीर में प्रवेश कर जाती हैं। संन्यास पर जो लोग बहुत तरह से प्रवेश कर रहे थे- हजारों दिशाओं से, उनको यह भी ख्याल आया कि अगर लाल किरणें शरीर से वापस लौटाई जा सकें तो वे कामुकता को शांत करती हैं। इसलिए गैरिक वस्त्र चुना गया। ठेठ लाल भी चुना जा सकता था, लेकिन थोड़ा-सा फर्क किया गया- ऑकर, गैरिक। ठेठ लाल नहीं चुना। उसमें एक बड़ी अद्भुत बात है। लाल चुना जा सकता था, बिल्कुल लाल रंग और भी अच्छा होता, वह लाल किरण को बिल्कुल ही वापस कर देता। लेकिन अगर लाल किरण बिल्कुल वापस हो जाए तो शरीर के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचना शुरू हो जाता है। वह थोड़ी-सी तो भीतर जानी चाहिए। और भी एक कारण है कि अगर लाल किरण मेरे कपड़ों से पूरी तरह वापस लौटे तो जिसकी भी आंख पर पड़ती है उसको भी नुकसान पहुंचाती है। अब बड़े मजे की बात है कि संन्यासी ने इसकी भी चिंता की कि उसके कपड़े से किसी को नुकसान भी न पहुंच जाए। आप लाल रंग का कपड़ा जरा बैल के सामने कर दें तो आपको पता चलेगा कि बैल भी कुछ रंगों को समझता है। बैल भी छिड़कता है लाल रंग के कपड़े को देखकर। उसकी आंख पर लाल रंग की चोट गहरी पड़ती है। आप जानकर हैरान होंगे कि जो लोग "कलर साइकोलॉजी" पर, रंग के मनसशास्त्र पर काम करते हैं, उनके बड़े अद्भुत अनुभव हुए। आज तो पश्चिम में रंग पर बहुत काम चलता है। क्योंकि रंग के बहुत उपयोग उनके ख्याल में आ गए हैं।
अभी एक बहुत बड़े दुकानदार ने, एक सुपर स्टोर के मालिक ने अमरीका में
एक रिसर्च, शोध करवाई कि हम अपनी चीजें जिन डिब्बों में रखते हैं उन पर हम किस तरह के रंग लगाएं कि बिक्री पर उसका असर पड़े! बड़ी हैरानी की बात यह हुई कि जो स्त्रियां खरीदने आती हैं उस सुपर स्टोर में, उन पर रिसर्च चलती रहती है पूरे वक्त कि जितनी स्त्रियां वहां आती हैं, पूरे वक्त रिकार्ड किया जाता है कि उनकी आंखें सबसे ज्यादा किस रंग के डिब्बे को पकड़ती हैं। तो यह पाया गया कि वही डिब्बा अगर पीले रंग में पोता जाए तो बीस प्रतिशत बिक्री होती है और वही डिब्बा लाल रंग में पोत दिया जाए तो अस्सी प्रतिशत

बिक्री होती है। डिब्बा वही, चीज वही, नाम वही, सिर्फ रंग डिब्बे का बदल दिया जाए। लाल रंग स्त्रियों की आंख को बहुत जोर से पकड़ लेता है। इसलिए सारी दुनिया में स्त्रियां लाल रंग के कपड़े सबसे ज्यादा पहनती हैं। लाल रंग न रखने के भी कारण हैं। लाल रंग का थोड़ा-सा शेड हटाया, गैरिक किया। यह जो गैरिक, यह जो "ऑकर" कलर है इसमें लाल के सारे फायदे हैं और लाल का कोई भी नुकसान नहीं है। एक तो कामुकता को यह बहुत क्षीण करता है। और दूसरी बात, बहुत-सी बातें हैं, सारी बात तो नहीं कह सकूंगा क्योंकि वह बहुत लंबा मामला है। अगर रंग की सारी बात समझनी हो तो बहुत लंबी बात है। लेकिन थोड़ी- सी बातें ख्याल में ली जा सकती हैं। गैरिक रंग सूर्य के उगने का रंग है- जब सुबह सूर्य उग रहा होता है, बस फूट रही है पौ, सूरज निकलना शुरू हुआ- उस वक्त का रंग। ध्यान में भी जब प्रवेश होता है तो जो पहले प्रकाश का रंग होता है वह गैरिक है। और जो प्रकाश का अंतिम अनुभव होता है वह नील है। गैरिक रंग का अनुभव शुरू होता है, भीतर प्रकाश में और नीले पर अंत होता है, नीले रंग पर पूरा हो जाता है। ध्यान के पहले चरण की सूचना गैरिक रंग में है। और जब संन्यासी ध्यान में प्रवेश करता है तो उसे वह रंग दिखायी पड़ना शुरू हो जाता है। और अगर वह दिनभर भी, खुली आंख में भी उस रंग को बार-बार देख लेता है तब रिमेंबरिंग वापस लौट आती है। और दोनों के बीच एक तालमेल, एसोसिएशन हो जाता है। एक अंतर-संबंध हो जाता है। जब भी वह अपने गैरिक वस्त्र को देखता है तभी उसे ध्यान का स्मरण आता है। दिन में पच्चीसों दफा अकारण उसको ध्यान का स्मरण आ जाता है और वह वापस डूब जाता है। आप बाजार जाते हैं, कोई चीज लानी है खरीदकर, आप कपड़े में गांठ लगा लेते हैं। गांठ से चीज लाने का कोई संबंध है? कोई भी तो संबंध नहीं है। लेकिन बाजार में अचानक गांठ का ख्याल आता है और फौरन याद आ जाता है कि फलां चीज ले आनी है। गांठ से एसोसिएशन, अंतर्संबंध हो गया। गांठ से एक कंडीशनिंग हो गयी, एक संस्कार हो गया। पावलोव ने एक प्रयोग किया। पावलोव एक कुत्ते के सामने रोटी रखता है। साथ में घंटी बजाता है। रोटी देखकर कुत्ते के मुंह से लार टपकती है। फिर पंद्रह दिन बाद रोटी देना बंद कर देता है, फिर घंटी बजाता है। लेकिन घंटी सुनकर भी कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगती है। क्या हो गया इस कुत्ते को? घंटी और रोटी में एक अंतर्संबंध, एक एसोसिएशन हो गया। एक कंडीशन रिफ्लेक्ट पैदा हो गयी। अब कुत्ते को घंटी का बजना तत्काल रोटी की याद बन जाती है। हम पूरी जिंदगी इसी तरह जी रहे हैं। हम पूरी जिंदगी इसी तरह कर रहे हैं, लेकिन हमने सब तरह के गलत कंडीशंस, गलत रिफ्लेक्सेज पैदा किए हुए हैं। ध्यान के पहले रंग का जो अनुभव है वह अगर संन्यासी को दिन में पच्चीस-पचास बार याद आ जाए- जब भी वह उठे, जब भी वह बैठे, जब भी वह सोए, जब भी वह स्नान करने जाए, जब भी कपड़े उतारे, जब भी कपड़े निकाले तो बार-बार उसे ध्यान की सुध, स्मृति लौट आती है। वह गांठ हो गयी उसके पास, जो उसके काम पड़ जाती है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि कोई गैरिक वस्त्र पहने बिना संन्यासी नहीं हो सकता। संन्यास इतनी बड़ी चीज है कि वस्त्रों से उसे बांधा नहीं जा सकता। लेकिन, वस्त्र एकदम व्यर्थ नहीं हैं उनकी अपनी अर्थवत्ता है। इसलिए मैं पसंद करूंगा कि सारी पृथ्वी पर लाखों लोग गैरिक वस्त्रों में दिखायी पड़ें।
भगवानश्री, साधक और संन्यासी में क्या फर्क है और क्या बिना संन्यासी हुए कोई साधक नहीं हो सकता?
संन्यासी हुए बिना कोई साधक नहीं हो सकता। साधक होने का मतलब है, संन्यास की शुरुआत। असल में साधक का मतलब संन्यास को साधनेवाला है- संन्यास साधना है, और साधक क्या करेगा? उसे जगत में धीरे-धीरे समस्त सुखों व दुःखों के पार होकर आनंद को उपलब्ध होना है। उसे कर्ता के पार होकर साक्षी को उपलब्ध होना है, उसे अहंकार के पार होकर शून्य को उपलब्ध होना है, उसे पदार्थ के पार होकर परमात्मा को उपलब्ध होना है। इन सबका इकट्ठा नाम संन्यास है। साधक का मतलब है, संन्यास शुरू हुआ। सिद्ध का मतलब है, संन्यास पूरा हो गया। दोनों के बीच जो यात्रा है वह संन्यास की यात्रा है। संन्यास के लिए ही तो साधना है। तो साधक का अर्थ ही यह है कि वह संन्यास की खोज में निकला है। लेकिन मेरे संन्यास का मतलब ख्याल में रखना आप। मेरा

संन्यास उपलब्धि का है, पाने का है, रोज विराट्, रोज विराट को पाते चले जाने का है।
आपके संन्यासी की दिनचर्या क्या होगी?
"मेरे" संन्यासी की नहीं, क्योंकि कोई मेरा संन्यासी कैसे होगा! संन्यासी की दिनचर्या की बात करें। असल में, दिनचर्या जब भी हम बनाते हैं तभी नुकसान पहुंच जाता है। एक झेन फकीर से किसी ने पूछा कि आपकी दिनचर्या क्या है? उसने कहा, जब मुझे नींद आती है तब मैं सो जाता हूं और जब मेरी नींद खुलती है तब मैं उठ आता हूं। और जब मुझे भूख लगती है तब मैं खाना खा लेता हूं। और जब मुझे भूख नहीं लगती है तो मैं खाना बिल्कुल नहीं खाता। ठीक कही है उसने बात। संन्यासी का मतलब यह है कि जो थोप नहीं रहा है कुछ, जीवन को सहजता में ले रहा है। हम सब बड़े अजीब लोग हैं। जब नींद आती होती है तब हम जागते रहते हैं, जब नींद नहीं आती होती है तब हम करवट बदलकर सोने का मंत्र पढ़ते हैं। जब भूख नहीं होती है तब खा लेते हैं, जब भूख होती है तब रुके रहते हैं क्योंकि अभी समय नहीं हुआ। हम पूरी जिंदगी को अस्त-व्यस्त कर देते हैं। और शरीर की जो अपनी एक अंतर्व्यवस्था है उसको नष्ट कर देते हैं। संन्यासी का मतलब है कि वह जो विसडम आफ द बाडी है, जो शरीर की अपनी अंतर्प्रज्ञा है, उसके अनुसार जिएगा। वह सोएगा, जब उसे नींद आ जाती है- जागेगा, जब नींद खुल जाती है, ब्रह्ममुहूर्त में नहीं उठेगा! जब नींद खुलती है, उसको ब्रह्ममुहूर्त कहेगा। वह कहेगा, जब भगवान उठा देता है तब मैं उसे ब्रह्ममुहूर्त कहता हूं। ऐसा सब सहज होगा, इसलिए मैं कोई चर्या नहीं बता सकता। और फिर जब भी चर्या तय की जाती है तभी कठिनाइयां शुरू होती हैं, क्योंकि तय मैं अपने हिसाब से करूंगा। और मेरा हिसाब आपका हिसाब नहीं हो सकता। अगर मैं कहूं, तीन बजे रात उठना है तो हो सकता है, मुझे तीन बजे रात उठना आनंदपूर्ण पड़ता हो और आपके लिए बीमारी का कारण हो जाए। हर आदमी के शरीर की अपनी व्यवस्था है, जिसका हमको ख्याल नहीं होता।
आमतौर से लोग मुझे कहते हैं, आजकल की स्त्रियां बहुत अलाल, आलसी हो
गयी हैं। पति को उठकर चाय बनानी पड़ती है और पत्नी सोयी रहती है। लेकिन आपको पता नहीं है, यह बिल्कुल उचित है। स्त्रियों के उठने की जो अंर्तेर्यवस्था है वह पुरुषों से दो घंटा पिछड़ी हुई है, पीछे है। अगर पुरुष पांच बजे उठ सकता है तो स्त्री सात बजे उठ सकती है। इस पर बहुत काम हुआ है। नींद पर जो खोज चलती है सारी दुनिया में उससे बड़ी हैरानी के अनुभव हुए हैं। वह अनुभव यह है कि चौबीस घंटे में दो घंटे के लिए हर आदमी के शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है। आपको अक्सर ख्याल हुआ होगा कि सुबह चार बजे के करीब सर्दी लगने लगती है। वह सर्दी बढ़ने के कारण नहीं लगती। आपके शरीर का तापमान गिर गया होता है। दो घंटे के लिए चौबीस घंटे में हर आदमी के शरीर का तापमान गिरता है। और वे जो दो घंटे हैं सबके अलग-अलग हैं। किसी का दो बजे से चार बजे के बीच गिरता है, रात में। किसी का तीन से पांच के बीच गिरता है, किसी का पांच से सात के बीच गिरता है। वे जो दो घंटे हैं, वही गहरी नींद के घंटे हैं, क्योंकि जिस आदमी को वह दो घंटे नींद के नहीं मिले वह दिनभर परेशान रहेगा। लेकिन वह सबके अलग-अलग हैं। कोई दस हजार लोगों पर अमरीका में पिछले पांच वर्ष में नींद पर प्रयोग किए गए हैं। और यह पाया गया है कि वह समय हर आदमी का अलग है। इसलिए अब कोई निश्चय नहीं किया जा सकता कि आप कब उठें? आप पर ही छोड़ा जाएगा कि आप उठकर सब तरह से देख लें- कुछ दिन प्रयोग करके और जिसमें आप दिनभर ताजे रहते हों वही क्षण आपके उठने का है। और जिसमें आप रातभर गहरे सोते हों वही क्षण आपके सोने का है। समय की लंबाई तय नहीं की जा सकती है। कोई आदमी पांच घंटे में पूरी नींद ले सकता है, कोई सात घंटे में, किसी को आठ घंटे भी लग सकते हैं। कोई तीन घंटे में भी नींद पूरी कर सकता है। लेकिन जो आदमी तीन घंटे में कर लेता है वह खतरनाक हो जाता है। वह दूसरों को कहता है, अलाल हो, तामसी हो। पागल हो गए हो? वह तीन घंटे में सो लिया इसलिए वह बड़े अहंकार से भर जाता है। वह सोचता है कि हम कोई बड़ा सात्विक कार्य कर रहे हैं। बाकी लोग जो छह घंटे सो रहे हैं, तामसी हैं। वह उनकी तरफ निंदा के भाव से देखना शुरू कर देता है। और अगर उसको किताब वगैरह लिखना आता हो तब तो बहुत खतरा हो जाता है। वह नियम बना जाता है। वह नियम

बना देता है सख्ती से कि तीन बजे रात उठना, नहीं तो नरक में जाओगे। तीन बजे आप उठें कि आप नरक में जाने के पहले नरक में चले जाओगे। कितना खाना, क्या खाना, क्या पहनना, कैसे पहनना, कैसे सोना, इस सबकी बहुत ही सामान्य चर्चा की जा सकती है, चर्या नहीं बनायी जा सकती। चर्या तो आपको अपनी सदा तय करनी पड़ती है। इनडिवीजुअल टु इनडिवीजुअल- एक-एक व्यक्ति को अपनी ही तय करनी पड़ती है। अपनी ही तय करनी चाहिए भी। इतनी तो स्वतंत्रता कम से कम रखिए? संसारी नहीं रख पाता। संन्यासी तो रख सकता है? संन्यासी को तो रखनी ही चाहिए। उसको तो अवश्य ही यह स्वतंत्रता रखनी चाहिए कि उसके लिए जो सुखद है, जो शांतिपूर्ण है, जो आनंदपूर्ण है, वह वैसे जिएगा। एक ही बात ध्यान में रखने की है कि उसके कारण किसी को दुःख, पीड़ा परेशानी न हो- किसी को भी- ऐसे वह जिएगा। इतनी चर्या उसके लिए पर्याप्त होती है। यह विस्तार में मुझे आपसे बात करनी पड़े क्योंकि सामान्य बात की जा सकती है कि क्या खाना, क्या नहीं खाना, लेकिन सख्त नहीं हुआ जा सकता। अब हम देखते हैं कि एक आदमी सिगरेट पी रहा है। अब सारी दुनिया उसके खिलाफ है, लेकिन वह पिए चला जा रहा है। डाक्टर उसको समझा रहे हैं कि तुम बीमार हो जाओगे। वह कहता है, मानता हूं, बिल्कुल सच जंचता है, लेकिन नहीं छूट सकता। मामला क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि सिगरेट उसके लिए कोई बहुत जरूरी हिस्सा पूरा करती हो? करती है! मैक्सिको में इधर एक अन्वेषण-कार्य चलता था तो पाया गया कि जो लोग सिगरेट पीने में बड़े पागल हो जाते हैं, इनके शरीर में निकोटिन की कमी हो गयी होती है। उनको निकोटिन किसी न किसी तरह पूरा करना पड़ता है। वह चाहे सिगरेट से पूरा करें, चाहे कोको से, चाहे तमाखू खाएं, इन सब में निकोटिन है। वह कहीं-न-कहीं से निकोटिन पूरा करेगा। मगर बिचारे बड़े फंस जाएंगे, और अनैतिक हो जाएंगे। अब एक आदमी धुआं भीतर ले आता है, बाहर निकालता है, इसमें कोई अनीति का काम नहीं कर रहा है। कर रहा है तो ज्यादा से ज्यादा नासमझी का काम कर रहा है- अनीति का नहीं कर रहा है। धुआं भीतर ले जाने और बाहर निकालने में कौन-सी अनीति है? हां दूसरे की नाक पर न छोड़ता हो तो काफी है। दूसरे से पूछ लेता हो कि आप आज्ञा देते हैं कि मैं जरा धुआं बाहर-भीतर कर सकूं। यह आदमी धुआं बाहर-भीतर करता है, इसमें अनीति किसी के साथ कुछ करता नहीं। एक इनोसेंट नॉनसेंस, एक निर्दोष बेवकूफी करता है। धुआं भीतर ले जाता है, बाहर ले जाता है। लेकिन हो सकता है कि इसकी जरूरत हो। अच्छा तो यह हो कि यह जाकर समझे-बूझे। लेकिन शरीर के बाबत हमारी जानकारी बहुत कम है। इतना चिकित्सा शास्त्र विकसित हुआ, फिर भी जानकारी बहुत कम है। अभी भी हम शरीर के पूरे रहस्यों को नहीं समझ पाए कि शरीर की क्या मांग है, क्या जरूरत है, क्या मुसीबत है, क्या कठिनाई है। लेकिन शरीर अनजाने रास्ते से हमें पकड़कर अपनी जरूरत पूरी करवाता है। वह कहता है कि सिगरेट पियो, कहता है तमाखू खाओ। फिर जब आदत पकड़ लेती है तो उसकी तृप्ति होने लगती है फिर वह छोड़ता नहीं। ऐसा नहीं है कि जो लोग सिगरेट पीते हैं, उन सभी के भीतर निकोटिन की कमी होगी। दस में से नौ तो दूसरे को देखकर पीते हैं। और जब देखकर पीने लगते हैं तो फिर एक तरह की यांत्रिक आदत, एक तरह की मैकेनिकल हैबिट पकड़नी शुरू हो जाती है। फिर वे पीते चले जाते हैं। फिर न पिएं तो मुसीबत होने लगती है। लेकिन कुछ भी बात तय नहीं की जा सकती ऊपर से और निश्चित रूप से सबके लिए कोई एक योजना नहीं बनायी जा सकती कि आदमी ऐसा उठे, ऐसा बैठे, ऐसा सोए, ऐसा खाए, ऐसा पिए। हां, कुछ मोटी बातें कही जा सकती हैं। जो भी करे जागकर करे, जो भी करे होशपूर्वक करे। जो भी करे, अपने सुख और दूसरे का सुख ध्यान मे रखकर करे। जो भी करे उससे स्वास्थ्य, शांति और आनंद बढ़ता हो, उस दिशा में करे- घटता हो, उस दिशा में न करे। जो भी खाए-पिए, वह बोझ न बन जाता हो, हल्का करता हो, स्वस्थ करता हो, ताजा करता हो। जो भी खाए-पिए, उससे अकारण, अनावश्यक हिंसा न होती हो। अनावश्यक, अकारण किसी को चोट, दुःख पीड़ा न होती हो। जो भी भोजन में ले, उसमें स्वास्थ्य का ध्यान महत्वपूर्ण हो। स्वाद लेने की कला सीखे। स्वाद वस्तुओं पर कम निर्भर रह जाए, भोजन करने की कला पर ज्यादा निर्भर हो जाए, ऐसी मोटी बातें की जा सकती हैं। और इन मोटी बातों के आधार पर अपने व्यक्तित्व को देखकर निर्णय लेने चाहिए। न किसी और तरह की कोई डिसिप्लिन है, न कोई अनुशासन है। प्रत्येक

व्यक्ति आत्मनियंता है। और संन्यास का तो मतलब ही है कि हम अपने निर्णय का अधिकार घोषित करते हैं कि अब हम अपने को अपने ही ढंग से निर्धारित करेंगे। आप कहेंगे, इसमें कोई गलती करे! करे, तो गलती का दुःख भोगेगा। इसमें आपको परेशान होने की जरूरत नहीं। गलती करे तो जैसे गलती कोई करता है उसका दुःख पाता है- पाएगा! ठीक करेगा, सुख पाएगा। दूसरे गलती न करें, इसमें दूसरों को बहुत उत्सुकता नहीं लेनी चाहिए। क्योंकि दूसरों की यह उत्सुकता अनैतिक है। आप दूसरों को गलती तक न करने देवें, तो आप कौन हैं! दूसरों को गलती करनी है, करने दें। उसी सीमा पर उसे रोका जा सकता है, जहां उसकी गलती दूसरे के लिए पीड़ादायी बने, अन्यथा नहीं रोका जा सकता। वह अपनी गलती करता रहे। उसकी गलती अगर दुःख लाती है तो उसको ले आएगी। संन्यासी का मतलब यह है कि वह विवेक से जी रहा है, वह जांच रहा है हर समय कि कौन-सी चीज से दुःख आता है, कौन-सी चीज से सुख आता है। जिससे सुख आता है उसको वह स्वीकार करेगा, जिससे दुःख आता है, धीरे-धीरे उसे छोड़ेगा, वह धीरे-धीरे अपने आनंद की खोज की यात्रा पर निकला है। आप उसके लिए परेशान न हों, लेकिन इधर मैं बहुत हैरान होता हूं। यहां संन्यासी जितना चिंतित नहीं होता, उसके आस-पास जो लोग इकट्ठे होते हैं वे ज्यादा चिंतित होते हैं कि कोई गलती तो नहीं कर रहा? ये जो सेल्फ अपाइंटेड जज, स्व-नियुक्त निर्णायक हैं, इनको किसने लिखकर दिया है कि तुम इसकी फिक्र मत करना कि कोई गलती तो नहीं कर रहा है? कि संन्यासी ठीक वक्त सोया कि नहीं, कि यह ब्रह्ममुहूर्त में उठता है कि नहीं, दिन में तो नहीं सो जाता है। आप कौन हैं, आप क्यों पीछे पड़े हैं किसी के? नहीं, इसके पीछे कारण हैं। हमको बड़ा रस आता है इसमें। ये टार्चर करने की तरकीबें हैं, ये दूसरे आदमी को सताने के उपाय हैं। और फिर हम कहते हैं कि हम आदर भी देते हैं तो इसी की वजह से देते हैं कि तुम गलती नहीं करते। तो हम सौदा भी तय कर लेते हैं। आदमी को हम फंसा लेते हैं। उसको आदर चाहिए आपसे? ठीक है, वह आपके नियम मानकर चलता है और या होशियार हुआ तो ऊपर से दिखाता है कि नियम मानता है, नीचे से नियम तोड़ता जाता है। मैं संन्यासी को पाखंडी नहीं होने दे सकता हूं। और एक ही रास्ता है कि संन्यासी पाखंडी होने से बचे और वह है कि हम उसकी फिक्र छोड़ दें, उसे अपनी फिक्र करने दें। नहीं तो वह पाखंडी हो ही जाएगा। हमने सब संन्यासियों को पाखंडी, हिपोक्रेट कर दिया है। लोगों को हमने दिक्कत में डाल दिया है। अब एक साधुओं का वर्ग है जो स्नान नहीं कर सकता। अब उसके आस-पास के लोग देखते रहते हैं कि स्नान तो नहीं कर लिया? अब उसको गंदगी में ढकेल रहे हैं और वह गंदगी में ढंका जा रहा है लेकिन उसको आदर दे रहे हैं, पैर छू रहे हैं, बदले में। अब वह सोचता है कि नहाने की कीमत पर पैर छूना मिल रहा है, चलने दो। लेकिन वह एकांत में मौका देखकर, पानी से कपड़े को गीला करके "स्पंज वाश" कर लेता है, कुछ थोड़ी-बहुत सफाई कर लेता है। मगर उसको चोरी और गिल्ट, अपराध-भाव में ढकेल रहे हैं, वह नहाने के पीछे उसको हम धक्का दे रहे हैं। अभी एक सज्जन मेरे पास आए, उन्होंने कहा, फलां साध्वी आपके पास आती है। हमने सुना है कि वह टूथपेस्ट करती है। मैंने कहा, तुम पागल हो गए हो? संन्यासिनी टूथपेस्ट करती है कि नहीं करती है- तुम कोई टूथपेस्ट का काम करते हो? तुम्हें इससे क्या मतलब? उन्होंने कहा, हमारे समाज में दातून करने की तो मनाही है। "तो तुम मत करो", मैंने उनसे कहा। वह मजे से टूथपेस्ट कर रहे हैं। उन्होंने कहा, "संन्यासी न कर पाए।" क्योंकि उसका कारण वह आदर भी देते हैं, बदला भी मांगते हैं। तो मैं अपने संन्यासी को, जिसको मैं संन्यासी समझ रहा हूं उसको कहूंगा, आदर मत मांगना अन्यथा बंधन शुरू हो जाएगा- मांगना ही मत। नहीं तो सब तरह के बेईमान और सब तरह के चोर इकट्ठे हैं, वे सब फंसा लेंगे। वे कहेंगे, आदर हम देते हैं, पैर हम छूते हैं, लेकिन हमारी भी शर्ते हैं- इतना-इतना। संन्यासी का मतलब यह है कि जो यह कहता है हम तुम्हारे समाज, तुम्हारी शर्तों की कोई चिंता नहीं करते। हमने अपनी चिंता करनी शुरू कर दी, अब आप हमारी फिक्र न करें। व्यक्ति का विवेक ही उसका पथ प्रदीप है।
संन्यासी अगर व्यापार करे तो क्या ब्लैक मार्केटिंग, कालाबाजारी भी
कर सकता है?

संन्यासी दुकान पर बैठकर दुकानदार का अभिनय करेगा, यह तो ठीक? लेकिन
वह ब्लैक मार्केटिंग का भी अभिनय कर सकता है। करेगा, तो उससे बहुत नुकसान नहीं होगा, क्योंकि वह संन्यासी न होता तो भी ब्लैक मार्केट करता। उससे कोई नुकसान नहीं होगा किसी को। लेकिन मैं मानता हूं कि जिस आदमी को संन्यास का ख्याल आया है और जो हिम्मत जुटाकर, साहस जुटाकर अपने जीवन में एक प्रयोग करने चला है और जो दुकानदार होने का अभिनय कर रहा है, वह ब्लैक मार्केटिंग का अभिनय नहीं कर सकेगा। क्योंकि ब्लैक मार्केटिंग करने के लिए अभिनय पर्याप्त नहीं है, कर्ता होना जरूरी है। जितना बुरा काम करना हो उतना ही कर्ता होना आवश्यक होता चला जाता है। बुरे काम का आंतरिक दंश है, पीड़ा है। उसके लिए "इनवॉल्व" होना जरूरी होता है उसके लिए "कमिटेड" होना जरूरी होता है, उसके लिए डूबना जरूरी होता है। मैं किसी आदमी को अभिनय में छुरा नहीं मार सकता- मुश्किल पड़ेगा। क्योंकि दूसरे आदमी की जिंदगी दांव पर होगी और तब अभिनय में छुरा मारने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। अभिनय की जो धारणा है, अगर ठीक से ख्याल में आए तो पहले तो मैं यह कहता हूं कि अगर वह करेगा ब्लैक मार्केटिंग तो नुकसान किसी का नहीं हो रहा है, क्योंकि जो संन्यासी होकर ब्लैक मार्केटिंग कर रहा है वह संन्यासी नहीं होकर कर ही रहा था सदा ही, इसलिए कहीं कोई नुकसान नहीं हो रहा है। उसमें तो हमें चिंतित होने की जरूरत नहीं है। संभावना यह भी है- और मेरे लिए बहुत संभावना है कि वह जो संन्यासी होने के ख्याल से भरा है, वह ब्लैक मार्केटिंग का अभिनय करने नहीं जाएगा- नहीं जा सकता है। संन्यासी होने की जो प्रज्ञा है, संन्यासी होने का जो विवेक है वही बताएगा कि उसे क्या करना, क्या नहीं करना। अभिनय वह वहीं करेगा जहां बिल्कुल करणीय है- जो उसका बिल्कुल कर्तव्य है। जिसे छोड़कर भागना पलायन होगा। जिससे हट जाना जिम्मेवारी से बचना होगा। जिससे भाग जाना किसी के लिए दुःख और पीड़ा का इंतजाम बना जाना होगा- वहीं-वहीं वह अभिनय करेगा। अभिनय तो हमेशा ही अत्यंत करणीय का, अत्यंत आवश्यक हो जाएगा। अनावश्यक का अभिनय करने की जरूरत नहीं रह जाएगी, ये अपने आप कट जाएंगे।
आप गैरिक वस्त्र पहनने के लिए कहते हैं, लेकिन आप स्वयं गैरिक वस्त्र क्यों नहीं पहनते?
जानकर ही! एक तो, इसके पहले कि मैं गैरिक वस्त्र पहनता, संन्यास घट गया। इसके पहले कि मुझे पता चलता कि गैरिक वस्त्र पहनूंगा तो संन्यास घटेगा, संन्यास पहले ही घट गया। पीछे पहनने का कोई अर्थ न रहा, कोई कारण न रहा। दूसरा, मैं गैरिक वस्त्र पहनूं और फिर कहूं कि गैरिक वस्त्र का कोई उपयोग है तो शायद ही लगे कि मुझे अपने जैसे ही वस्त्र दूसरों को भी पहना देने की आतुरता है। नहीं, अपनी शक्ल मैं किसी को ओढ़ाना नहीं चाहता। इसलिए जो भी मैं पहनता हूं, जैसे भी मैं उठता-बैठता हूं, जैसे भी मैं जीता हूं उसको किसी पर ओढ़ देने का, किसी पर ढांक देने का जरा भी मन नहीं है। गैरिक वस्त्र पहनकर गैरिक वस्त्र के संबंध में कुछ कहता तो शायद लग सकता था कि मैं अपने वस्त्रों की तारीफ करता हूं। लेकिन मैं बिना गैरिक वस्त्र का हूं इसलिए गैरिक वस्त्रों से मेरा कोई निजी लगाव नहीं है इतना तो बहुत साफ है। इसलिए अगर गैरिक वस्त्र की कोई तारीफ करता हूं तो सिवाय वैज्ञानिक कारणों के और कोई कारण नहीं है। मैं खुद तो पहनता नहीं हूं, मेरा खुद का तो कोई लगाव नहीं है, मैं तो बिल्कुल बाहर हूं।
आपके पहले शंकराचार्य ने भी आनंद-केंद्रित संन्यास की धारणा दी थी?
मैं नहीं मानता कि शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित संन्यास आनंद-केंद्रित है। क्योंकि शंकराचार्य का जगत के प्रति बड़ा निषेध का भाव है। निषेध इतना गहरा है कि वह जगत को माया सिद्ध करने की सतत चेष्टा में लगे हुए हैं। यह जगत झूठा है, यह जगत भ्रम है, यह जगत माया है, यह जगत है ही नहीं, इसे सिद्ध करने का उनका आग्रह इतना प्रगाढ़ है कि यह जगत उन्हें चारों तरफ से परेशान कर रहा है, यह भी साफ है। इस जगत का होना उन्हें इतना गड़ रहा है कि उसे इनकार किए बिना, उसे स्वप्न बनाए बिना वे छुटकारा नहीं पा सकते। शंकर का निषेध बहुत गहरा है। आनंद की बात शंकर करते हैं। लेकिन मेरे और उनके आनंद में भी बड़ा बुनियादी फर्क है। वे उस आनंद की बात करते हैं जो

संसार के त्याग से उपलब्ध होता है। वे उस आनंद की बात करते हैं जो माया को छोड़ने से ब्रह्म-मिलन से उपलब्ध होता है। मैं उस आनंद की बात करता हूं जो समस्त को, समग्र को- माया को, ब्रह्म को, संसार को, प्रभु को- सबको स्वीकार करने से उपलब्ध होता है। निषेध मेरे मन में कहीं भी नहीं है। त्याग मेरे मन में कहीं भी नहीं है। शंकर अगर आनंद की बात भी करते हैं तो वह संसार के त्याग में ही छिपा है। वह संसार को छोड़ देने में ही छिपा है। मेरे लिए आनंद इतना विराट है कि संसार भी उसमें समा जाता है, परमात्मा भी उसमें समा जाता है सब उसमें समा जाता है। आनंद में मेरे लिए किसी बात का कोई भी निषेध नहीं है। और, आखिरी बात मैंने कहा, "अपने संन्यासी!"- तो जीभ के चूक जाने से नहीं कहा। जीभ मेरी अजीब है, चूकती मुश्किल से ही है। पहली दफा जिन मित्र ने कहा था, "आपके संन्यासी" तो मैंने इनकार किया था कि "मेरे" मत कहिए। लेकिन प्रयोजन मेरा दूसरा था। प्रयोजन मेरा यह था कि संन्यासी मेरा कैसे हो सकता है। लेकिन जब मैंने दुबारा कहा तो जीभ नहीं चूकी। मैंने कहा, "अपने संन्यासी!" संन्यासी मेरा नहीं हो सकता, लेकिन मैं तो संन्यासियों का हो सकता हूं? और उस संन्यासी की- उस आनंद के संन्यासी की, जिसकी मैं बात कर रहा हूं, उससे लगाव है। उससे लगाव की अपेक्षा नहीं है मेरे प्रति। उससे कोई अपेक्षा नहीं है कि वह मेरे प्रति किसी तरह का संबंध रखे। लेकिन मेरा लगाव है। और मेरा लगाव इसमें है क्योंकि मैं देखता हूं कि उस तरह के संन्यासी में ही भविष्य में संन्यास के बचने की संभावना है, आशा है।
आपने कहा कि संन्यास की दीक्षा व्यक्ति और परमात्मा के बीच की सीधी
बात है। लेकिन तब प्रश्न उठता है कि दीक्षा में आपको गवाह व साक्षी के रूप में बीच में रखना क्या संन्यास के प्रति अविश्वास हो जाएगा?
यह बिल्कुल ठीक कहते हो कि संन्यास-दीक्षा तुम्हारे और परमात्मा के बीच की बात है, अगर इतना समझ में आ जाए तो मेरे साक्षी होने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन तुम यहां आए इसलिए हो कि तुम्हारे और परमात्मा के बीच सीधा संबंध नहीं बनता। नहीं तो तुम इधर किसलिए भटकते, इधर किसलिए परेशान होते! तब मैं साक्षी हो जाऊंगा। क्या आपके आस-पास फिर संप्रदाय न बन जाएगा? नहीं, संप्रदाय नहीं बनेगा। नहीं बनेगा इसलिए कि संप्रदाय बनाने के लिए कुछ जरूरतें हैं अनिवार्य। एक, गुरु चाहिए, शास्त्र चाहिए, सिद्धांत चाहिए, कोई विशेषण चाहिए। और इतना ही नहीं, इसके अतिरिक्त, इससे भिन्न, इससे अन्यथा जो है वह पूर्ण रूप से गलत है और यही पूर्ण रूप से सही है, ऐसा आग्रह भी चाहिए। तो एक तो उसे मैं संन्यासी कहता हूं, जिसका कोई विशेषण नहीं। बिना विशेषण के संप्रदाय बनाना मुश्किल है। बिना विशेषण के संप्रदाय बन नहीं सकता। उसे संन्यासी कह रहा हूं जिसका कोई धर्म नहीं, बिना धर्म के संप्रदाय कैसे बनाएगा! उसे संन्यासी कह रहा हूं जिसका कोई धर्मग्रंथ नहीं है, जिसका कोई धर्मगुरु नहीं है, जिसका कोई मंदिर नहीं है, मस्जिद नहीं है, शिवालय नहीं है, गुरुद्वारा नहीं है। संप्रदाय बनना मुश्किल है। कोशिश हमें करनी चाहिए कि संप्रदाय न बने, क्योंकि संप्रदाय ने धर्म को जितना नुकसान पहुंचाया है उतना किसी और चीज ने नहीं पहुंचाया है। अधर्म ने नहीं पहुंचाया है इतना नुकसान धर्म को, जितना संप्रदायों ने पहुंचाया है। असल में मिट्टी-पत्थर नुकसान नहीं पहुंचाते। असली सिक्के को कभी अगर नुकसान पहुंचता है तो सिर्फ नकली सिक्कों से पहुंचता है। नकली पत्थर से नहीं पहुंचता। धर्म के असली सिक्के को कभी भी नुकसान पहुंचता है तो संप्रदाय के नकली सिक्के से पहुंचता है। उसके लिए बहुत सचेत होने की जरूरत है। वह नहीं बन सकेगा, क्योंकि न तो मेरा कोई शिष्य है, न मैं किसी का गुरु हूं। और जिन लोगों के लिए मैं कह रहा हूं, मैं गवाह हूं उनको भी ऐसा सिर्फ इसीलिए कह रहा हूं कि अभी तुम सीधे नहीं जुड़ पाते। सीधे परमात्मा से जुड़ जाओ तो तुम मुझे परेशान मत करना। मैं नाहक परेशान होने को तैयार भी नहीं हूं। मेरा लेना नहीं है कुछ। मुझे कुछ संबंध नहीं है। अगर तुम सीधे ही जुड़ जाओ तो इससे बेहतर कुछ भी नहीं है। तब तो साक्षी का भी कोई सवाल नहीं, गवाह का भी कोई सवाल नहीं!
नाम बदलने का क्या अर्थ है? गले में माला पहनने का क्या अर्थ है?

हां, अर्थ है, बहुत है। संन्यासी का नाम बदलने का बड़ा अर्थ है। वह सूचक है। और हमारी जिंदगी में सभी कुछ सूचक है। एक नाम से आप जीते रहे हैं, एक नाम से आपकी आइडेंटिटी है। एक नाम आपका प्रतीक रहा है। आपके व्यक्तित्व का उससे जोड़ हो गया। आप कल तक जो थे उसके साथ आपके नाम का अंतर्जोड़, एसोसिएशन है। उससे वह जुड़ा है। संन्यासी का नाम बदलने का अर्थ यह है कि हम उसकी पुरानी आइडेंटिटी, तादाम्य से उसे तोड़ते हैं। हम कहते हैं, तुम वह नहीं रहे जो तुम कल तक थे। अब तुम एक नयी यात्रा पर जाते हो, नयी आइडेंटिटी लेकर जाते हो। पुराने दिनों में जब दीक्षा दी जाती थी तो एक छोटा-सा प्रयोग करते थे। वह प्रयोग यह था कि जैसे हम मुर्दे को नहलाते हैं अर्थी पर चढ़ाने के पहले, वैसे उसे नहलाते थे। जैसे हम मुर्दे के बाल घोंट देते हैं, सिर घोंट देते हैं। ऐसा उसका सिर घोंट देते थे। फिर जैसा मुर्दे को अर्थी पर चढ़ाते हैं वैसा उसे अर्थी पर चढ़ा देते थे। फिर अर्थी में आग लगा देते थे। और फिर आस-पास खड़े वे सारे लोग, जिनको मैं साक्षी कहूंगा, विटनेस कहूंगा, वे उससे कहते थे कि अब जल जाने दो उसे, जो तुम कल तक थे। और तब वे उसे चिता से बाहर खींचकर कहते थे कि यह तुम्हारा पुनर्जन्म है। अब तुम द्विज, रि-बॉर्न हुए, दूसरा जन्म हुआ। यह सिर्फ सिंबालिक रिचुअल था। अपने आप में वह दिखता है कि इसे न करें तो कोई हर्ज नहीं है- नहीं है कोई हर्ज। अगर समझ बहुत हो तब तो इस दुनिया में किसी भी रिचुअल का, किसी भी बात का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन उतनी समझ कहां है? वह आइडेंटिटी तोड़ने में सहयोगी हो जाता है। अचानक पता चलता है कि अब तुम वह नहीं रहे। बार-बार जब भी ख्याल आएगा कि अब मेरा वह नाम नहीं है जो कल तक था, मेरा दूसरा नाम है- अब रास्ते पर कोई बुलाएगा तो उस नाम से नहीं, जो कल तक आपका था। नए नाम से बुलाएगा- तो आप भी उतने ही चौंकेंगे। अपने भीतर से आइडेंटिटी, तादात्म्य रोज-रोज टूटेगा और पता चलेगा कि वह आदमी समाप्त हो गया जो कल तक था और एक नयी यात्रा शुरू हो गयी। इसके स्मरण के लिए नाम के बदलने का उपयोग है। दूसरी बात पूछी है कि माला का क्या अर्थ हो सकता है? व्यर्थ तो कुछ भी नहीं होता कभी। लंबे चल-चलकर व्यर्थ हो जाता है, यह दूसरी बात है। सभी चीजें चलते-चलते क्रिस जाती हैं और गंदी हो जाती हैं। माला में एक सौ आठ गुरिए देखे होंगे। लेकिन ख्याल में नहीं आया होगा कि वह क्या है? एक सौ आठ ध्यान की पद्धतियां हैं, एक सौ आठ मार्ग हैं ध्यान के, एक सौ आठ विधियों से ध्यान की संभावना है। और आप और मेरा संबंध बना रहा तो धीरे-धीरे एक सौ आठ विधियां सभी आपके ख्याल में ला देने की हैं। वह एक सौ आठ गुरिए एक सौ आठ ध्यान के प्रतीक हैं। जब कोई साक्षी किसी को यह माला देता था तो वह याद दिलाता था कि तुझे मैंने सिर्फ एक रास्ता ही समझाया और बताया है। और भी रास्ते हैं एक सौ सात। इसलिए किसी दूसरे को गलत कहने में बहुत जल्दी मत करना और सदा याद रखना कि अनंत रास्ते हैं उसके। और एक सौ आठ गुरियों के नीचे लटका हुआ एक बड़ा मनका देखा होगा। वह इस बात की खबर है कि एक सौ आठ में से किसी से भी पहुंचो एक पर अंत में आदमी पहुंच जाता है। कहीं से भी चलो, एक पर पहुंचना हो जाता है। एक सौ आठ गुरिया और एक मनका- ये सब सिंबालिक हैं, पोएटिक हैं, काव्यात्मक हैं, अर्थपूर्ण हैं। एक आदमी शादी करके लाता है घर स्त्री को। फिर हम उसका घर में नाम बदलते हैं। कभी पूछा नहीं कि क्यों बदलते हैं? आइडेंटिटी तोड़ते हैं। वह किसी और घर की लड़की है। वह कहीं और बड़ी हुई है, किसी और परिवार में बड़ी हुई है, किन्हीं और संस्कारों में पली है। उसके नाम के साथ उसका सारा पुराना व्यक्तित्व जुड़ा है। घर में लाकर हम उसका नाम बदल देते हैं। उसकी नयी यात्रा शुरू हो जाती है। हम उससे कहते हैं भूल जा उस घर को जहां तू थी, भूल जा उस संबंध को जहां तू थी, भूल जा उन संस्कारों को जहां तू थी। अब एक नया परिवार, अब एक नया घर, नयी दुनिया शुरू होती है, तेरे नए नाम के आस-पास अब एक नया क्रिस्टलाइजेशन, समग्रीकरण होगा। माला, नाम और बहुत कुछ है, उन सबके अर्थ तो बहुत हैं। लेकिन वे सब बातें धीरे-धीरे चल-चलकर व्यर्थ हो गयी हैं। और अब वे व्यर्थ हो गयी हैं तो मैं हजार बार उनके खिलाफ बोलता रहता हूं। मैं उनकी व्यर्थता के खिलाफ बोलता रहता हूं। लेकिन मेरी पीड़ा समझना आपको बहुत मुश्किल पड़ती है। मेरी पीड़ा यह है कि मैं जानता हूं कि कोई चीज सार्थक है और व्यर्थ हो गयी है। मैं उसके खिलाफ भी बोलता

रहूंगा और उसके पक्ष में भी कुछ करता रहूंगा। अब यह मेरी मुश्किल है। मैं कुछ चीजों के खिलाफ बोलता रहूंगा, क्योंकि वे व्यर्थ हो गयी हैं और फिर भी किसी मार्ग से उन चीजों के पक्ष में कुछ करता रहूंगा। क्योंकि मैं जानता हूं, मूलतः उनकी सार्थकता थी। और वह मूलतः सार्थकता नहीं खो जानी चाहिए। यह दोनों एक साथ चलेगा। इसलिए मैं कई तरह के मित्रों को दुश्मन बना लूंगा और कई तरह के साथियों को खोऊंगा और रोज यह चलेगा। और यह चलता रहेगा, उसमें कोई उपाय नहीं है। क्योंकि मैं एक दिन माला के खिलाफ बोलूंगा जब कोई मेरे पास आ जाएगा और माला की बात करने लगेगा तो मैं खिलाफ बोलूंगा। लेकिन, मैं हैरान हुआ हूं जानकर कि मैं बड़े-से-बड़े संन्यासियों के सामने माला के खिलाफ बोला, और वह माला के पक्ष में एक शब्द भी न कह सके। मैं तो सोचता था कि कोई मुझसे माला के पक्ष में कुछ कहेगा। अब कोई नहीं मिला तो मुझे खुद ही कहना पड़ेगा और कोई उपाय नहीं रहा।

नव-संन्यास क्या?
दूसरा प्रवचन

संन्यासः नयी दिशा, नया बोध

आपको अपने संन्यास का स्मरण रखकर ही जीना है ताकि आप अगर क्रोध भी करेंगे तो न केवल आपको अखरेगा, दूसरा भी आपसे कहेगा कि आप कैसे संन्यासी हैं? साथ-ही-साथ उनका नाम भी बदल दिया जाएगा। ताकि अन्य पुराने नाम से उनकी जो आइडेंटिटी, उनका जो तादात्म्य था वह टूट जाए। अब तक उन्होंने अपने व्यक्तित्व को जिससे बनाया था उसका केंद्र उनका नाम है। उसके आस-पास उन्होंने एक दुनिया रचायी, उसको बिखेर देना है ताकि उनका पुनर्जन्म हो जाए। इस नए नाम से वे शुरू करेंगे यात्रा और इस नए नाम के आस-पास अब वे संन्यासी की भांति कुछ इकट्ठा करेंगे। अब तक उन्होंने जिस नाम के आस-पास सब इकट्ठा किया था वह गृहस्थ की तरह इकट्ठा किया था। तो एक तो उनकी पुरानी आइडेंटिटी तोड़कर नाम बदल देना है। दूसरे उनके कपड़े बदल देना है, ताकि समाज के लिए उनकी घोषणा हो जाए कि वे संन्यासी हो गए और चौबीस घंटे उनके कपड़े उनको भी याद दिलाते रहेंगे कि वे संन्यासी हैं। रास्ते पर चलते हुए, पाठ करते हुए, काम करते हुए वे कपड़े जो हैं उनके लिए कांस्टेंट रिमेंबरिंग का काम करेंगे। जो आदमी घर छोड़कर चला जाता है उसके गेरुए कपड़े चार दिन में उसके लिए साधारण कपड़े हो जाते हैं। लेकिन जो आदमी गेरुवे कपड़े पहनकर घर में रहेगा, जिंदगीभर उसके कपड़े साधारण नहीं हो सकेंगे। जो भी आदमी आएगा वह फौरन इस कपड़े को देखेगा। जो भी आदमी मिलेगा वह पहले कपड़े देखेगा, कपड़े के संबंध में पूछेगा। फिर कोई बात करेगा कि संन्यासी दुकान पर बैठा है। दफ्तर में काम करेगा तो लोग पूछेंगे- क्लर्क गेरुवा वस्त्र पहनकर क्यों बैठा हुआ है? वह कहीं भी भूल नहीं पाएगा कि वह संन्यासी है तथा कपड़े और उसके बीच निरंतर घोषणा चलती रहेगी। और जिंदगी बड़ी अद्भुत है। यहां छोटे- से फर्क इतने बड़े सिद्ध होते हैं कि हिसाब लगाना मुश्किल है। अगर यह चौबीस घंटे स्मरण बना रहे कि मैं संन्यासी हूं तो यह स्मरण ही आपके व्यक्तित्व की बहुत-सी चीजों को बदल देगा जिन्हें आप लाख कोशिश करके नहीं बदल सकते। कल जो आप करते थे, आज करने में आपको होश रखना पड़ेगा। कल जैसा आप बोलते थे, वैसा बोलने में आज होश रखना पड़ेगा। यह होश आपके भीतर फर्क लाना शुरू कर देगा। इसलिए ऊपरी और कोई नियम मैं थोपना नहीं चाहता। आपका विवेक ही आपका नियम होगा। सिर्फ आपको स्मरण-भर बनाए रखना चाहता हूं कि आप संन्यासी हैं। बस इतना ही मैं चाहता हूं कि वह स्मृति आपसे छूटे नहीं। और विपरीत सिचुएशन अगर चौबीस घंटे मौजूद रहे तो ही नहीं भूलेंगे, अगर उल्टी परिस्थिति मौजूद रहे तो नहीं भूलेंगे। परिस्थिति अनुकूल हो जाए तो भूल जाएंगे। एक आश्रम में संन्यासी को बिठाल दें, थोड़े दिन में वह साधारण हो जानेवाला है। लेकिन एक दुकान पर बिठाल दें तो हमने चौबीस घंटे का एक तनाव पैदा किया है। आज जो ग्राहक आएगा, कल नया ग्राहक आएगा, वह भी कहेगा कि आप संन्यासी होकर दुकान पर बैठे हैं? यह पूछना बंद होनेवाला ही नहीं है। इसका उपाय नहीं बंद करने का- निकलेंगे तो, उठेंगे तो, बैठेंगे तो। और एक दफा अगर चार- छह महीने, आठ महीने, साल-भर भी यह कांस्टेंट रिमेंबरिंग रह जाए तो आप में फिर फर्क हो ही जाएगा। फिर कपड़े का तो कोई मूल्य भी नहीं है। उनको छोड़ भी दें तो कोई हर्जा नहीं है। यह साल-भर की निरंतर स्मृति आपको तो बदल ही जाएगी, बदल ही जानेवाली है। अपनी तरफ से मैं बिल्कुल ही बाहरी और छोटा-सा अंतर करवाता हूं। भीतरी अंतर आप पर छोड़ता हूं। भीतर अंतर रोज होते चले जाएंगे। न मैं आपकी सेक्स लाइफ को कहता हूं कि बदलना है, कुछ भी बदलने को नहीं कहता हूं। बहुत ऊपरी बदलाहट करनी है। भीतरी बदलाहट आपकी स्मृति से आनी शुरू होगी और वह जैसे-जैसे आएगी, बदलते जाना है। नहीं बदले तो उसकी चिंता नहीं लेनी है। ध्यान पर ताकत लगानी है। संन्यासी के साथ दूसरी जो एक ही शर्त है मेरी, वह यह कि वह ध्यान पर श्रम करता रहे। और तुम्हारे पास समय ज्यादा बच सकेगा तुम्हारी घोषणा के बाद। तुम्हारी सामाजिक औपचारिकताओं, फार्मलिटीज का जो ढेर वक्त जाया, नष्ट होता है वह बच सकेगा। किसी के घर शादी है, तुम नहीं

जाओगे तो चल सकेगा। फिजूल के जलसे हैं, तुम नहीं जाओगे तो चलेगा। लोग समझते हैं, वह आदमी संन्यासी है, उसको छोड़ देना चाहिए। तुम्हारे घर भी फिजूल की बातचीत चलनी बंद हो जाएगी। तुम्हारे आस-पास फिजूल का कचरा बंद हो जाएगा इकट्ठा होने से। तुम्हारे पास समय भी बच सकेगा और उस समय का तुम उपयोग कर सकोगे। तो ध्यान पर शक्ति लगानी है और बाकी सारे परिवर्तन अपने से होने दें। एक तो यह बड़ा वर्ग होगा संन्यासियों का, जिसको मैं कहता हूं कि व्यापक हो। इतना व्यापक हो कि मुल्क में लाखों संन्यासी हों। इनसे हम पूरे मुल्क की हवा और पूरे मुल्क का वातावरण बदलने की कोशिश कर डालेंगे। तुम संन्यासी हो, इसके साथ ही तुम्हारा दूसरा स्मरण तुम्हें जोड़ रखना है कि अब तुम जो भी कर रहे हो वह परमात्मा के एक उपकरण, एक इंस्ट्रूमेंट की तरह कर रहे हो। अब तुम कर्ता नहीं हो। अब तुम अगर रोटी कमाना चाह रहे हो तो वह भी परमात्मा के लिए, अगर घर बना रहे हो तो वह भी परमात्मा के लिए, अगर दुकान चला रहे हो तो वह भी परमात्मा के लिए! अब तुम्हारी अपनी कोई इगोसेंटर्ड, अहंकेंद्रित व्यवस्था नहीं है, अपने लिए कुछ करने का कारण नहीं है। अपने लिए तो तुम छूट गए लेकिन तुम्हारी जिम्मेदारियां हैं, उनके लिए तुम परमात्मा के निमित्त सब किए चले जा रहे हो। यह भाव कि मैं कर्ता नहीं हूं सिर्फ साक्षी हूं, तुम्हारी जिंदगी को आमूल बदल देगा। जहां तुम हो वहीं बदलाहट होगी। और तुम्हारी बदलाहट आस-पास संक्रामक हो जाएगी। अगर दुकानदार संन्यासी हो तो ग्राहक को भी छूता है, क्लर्क अगर संन्यासी हो तो जो उसके पास काम करवाने गया है उसको भी छूता है। क्योंकि इसका सारा व्यवहार बदल जाएगा, इसका सारा ढंग बदल जाएगा, इसकी सोचने की व्यवस्था बदल जाएगी, इसका सारा रंग बदल जाएगा। सब कुछ बदलेगा। उस बदलाहट से दूसरों में भी बदलाहट आनी शुरू होगी, तो हमारी इस मुल्क की जिंदगी में जितनी अनीति और जितना भ्रष्ट जीवन है उसके रूपांतरण के लिए हम आधार खोज सकेंगे। लोगों के मन में यह बात बैठ गई है कि अब अच्छा आदमी जी ही नहीं सकता। यह इतना गहरा बैठ गया है कि अब बुरे होने के लिए रास्ता खोजना पड़ता है। हमने तर्क अपने मन में बिठा लिए हैं कि अच्छा आदमी जी नहीं सकता। अच्छा आदमी तो मर ही जाएगा। तो मैं यह भी दिखाना चाहता हूं कि अच्छा आदमी ही नहीं, संन्यासी भी ठेठ इस जिंदगी में जी सकता है। तो वह आधार जो हमारे मन में अनीति का कारण बन रहा है उसे गिराने का उपाय हो सकेगा। फिर कहा जा सकता है कि इस तरह के लोग पाखंडी हो सकते हैं, तो कुछ हर्जा नहीं। क्योंकि जो आदमी संन्यासी होकर पाखंडी है, वह संभव है पहले भी पाखंडी रहा हो। हम दुनिया का कोई नुकसान नहीं करते हैं उससे, लेकिन उसके पाखंडी होने में बाधा हम जरूर डालते हैं। वह इतनी आसानी से पाखंडी नहीं हो सकेगा जितनी आसानी से वह कल हो सकता था। और अगर होगा भी तो दुनिया का हम कोई नुकसान नहीं कर रहे हैं। वह आदमी पहले पाखंडी था ही तो अब कोई दुनिया का अहित नहीं हो गया है। वह जितना पाखंडी था उतना ही होगा। फिर ऊपर से हम कोई नीति-नियम नहीं थोप रहे हैं ताकि उस आदमी को धोखा करना पड़े। हम उसकी किसी तरह की जिंदगी की भीतरी बातों को नहीं छू रहे हैं- छू ही नहीं रहे हैं। वह उसकी स्वतंत्रता ही होगी। हम उससे नहीं कह रहे हैं कि वह लोभ छोड़ दे। छूटता है तो वह उसकी स्वतंत्रता होगी। हम उससे नहीं कह रहे हैं कि वह काम छोड़ दे। छूटता है तो वह उसकी भीतरी व्यवस्था होगी। इसलिए हम कभी उसे गिल्टी, अपराधी बनाने की तरकीब नहीं कर रहे हैं, नहीं तो हमारा पुराना सारा संन्यासी अपराधी हो जाता। क्योंकि जो हमने उसको छोड़ने के लिए कहा है, नहीं छोड़ पाता है तो या तो वह दिखावा करता है कि उसने छोड़ दिया है। और नहीं छोड़ पाता है तो भीतर अपराधी होता है और या फिर वह पाखंडी हो जाता है- कहता कुछ है, करता कुछ है। इस सबकी हम बाधा नहीं डालते हैं। जिस संन्यासी की मैं बात कर रहा हूं, वह किसी का शिष्य नहीं है- मेरा भी शिष्य नहीं है। मैं ज्यादा से ज्यादा गवाह-भर हूं कि मेरे सामने वह संन्यास के मार्ग पर गया। इससे ज्यादा मेरे प्रति उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं है कि मैं उससे कल पूछ सकूं कि ऐसा तुमने क्यों किया? वह अपने ही प्रति रिस्पांसिबल, जिम्मेवार है। यह बिल्कुल इनर रिस्पांसिबिलिटी, आंतरिक जिम्मेवारी है। इसमें किसी से कोई लेना-देना नहीं है। कल उसे लगता है कि नहीं, यह मेरे काम की बात नहीं है या मैं इसमें

नहीं जा सकता हूं तो हम उसे रोक नहीं रहे हैं कि वह जीवनभर के लिए संन्यासी हो जाए। वह उसको छोड़ दे। जिस दिन छोड़ना है, यह उसकी मौज होगी। इसको कोई बाधा डालता नहीं। हालांकि मैं मानता हूं कि एक दफा संन्यास में, इस स्थिति में गया आदमी वापस नहीं लौट सकता है। क्योंकि उसके साथ के जुड़े हुए आनंद हैं, शांतियां हैं। वह उसको याद आएंगी और बुलाएंगी। तो बड़े व्यापक पैमाने पर यह होगा। दूसरे कुछ लोग हो सकते हैं जिनके लिए घर का कोई अर्थ ही नहीं है, घर है ही नहीं। रिटायर्ड, वृद्ध लोग हो सकते हैं जिनके लिए घर और ना-घर, कोई प्रयोजन नहीं है। अब जिंदगी में होने न होने का कोई मतलब नहीं है उनका। कोई जिम्मेवारी नहीं है। किसी को उनके हटने से दुःख नहीं पहुंचता है। युवक हो सकते हैं ऐसे, जिनके ऊपर कोई जिम्मेवारी नहीं है। ऐसे व्यक्तियों को मैं चाहता हूं कि अगर वे चाहें तो उनके लिए कुछ केंद्र मुल्क में होंगे जहां वे संन्यासी की तरह उन आश्रमों में रहें। लेकिन वे आश्रम भी प्रोडक्टिव, उत्पादक होंगे, वे आश्रम भी नॉन-प्रोडक्टिव नहीं होंगे। ऐसा नहीं होगा कि समाज उन आश्रमों को पालेगा। उन आश्रमों की अपनी खेती होगी, अपना बगीचा होगा, अपनी छोटी-मोटी इंडस्ट्री होगी और हर संन्यासी को वहां भी तीन घंटे काम करना ही पड़ेगा जो काम वह कर सकता है। अगर वृद्ध है तो तीन घंटे संन्यास के स्कूल में पढ़ा दे। डाक्टर है तो तीन घंटे आश्रम के अस्पताल में काम करे। चमार है तो तीन घंटे जूता साफ कर दे। जो भी कर सकता है, वह कर दे। और यह कम्यून-लिविंग होगी। इसमें जो डाक्टर काम करेगा और जो जूते की पालिश का काम करेगा उनमें कोई अंतर नहीं होगा। इनमें कोई ऊंचा-नीचा नहीं होगा। वह यह कर सकता है, वह यह करता है। दोनों को बराबर सुविधाएं, बराबर इंतजाम मिलेंगे। आश्रम में कोई पैसे का लेन-देन नहीं होगा। आश्रम के किसी संन्यासी को कोई पैसा नहीं देगा। खाना, रहना, कपड़ा वह सारा इंतजाम मिलेगा। उस संन्यासी को बाहर किसी काम के लिए भेजा जाएगा तो उसकी व्यवस्था होगी। यह सबके लिए समान होगा और तीन घंटे प्रत्येक को काम करना पड़ेगा ताकि आश्रम किसी पर निर्भर न हो। धीरे-धीरे ये इंडिपेंडेंट यूनिट, स्वतंत्र इकाई हो जाएंगे। ये यूनिट दो तरह के काम करेंगे। एक तो जो संन्यास ----गृहस्थ जीवन में संन्यासी होते हैं उनके लिए ट्रेनिंग की जगह हो जाएगी कि वे कभी महीने-पंद्रह दिन के लिए वहां आकर रह जाएं, वापस लौट जाएं। ध्यान के लिए आ जाएं और वापस लौट जाएं। और दूसरे संन्यासी दूसरा काम करेंगे। हर आश्रमवासी संन्यासी को जिसे तीन घंटा काम करना जरूरी होगा, उसे हर वर्ष में तीन महीने ध्यान करवाने के लिए बाहर जाना जरूरी होगा। वे गांव-गांव जाकर लोगों को ध्यान करवाएं और ये संन्यासी खबर भी दे आएं और इस संन्यास के लिए कुछ लोग उत्सुक होते हैं तो उनको उत्सुक भी कर आएं। दूसरा वर्ग संन्यासियों का यह होगा। और तीसरा एक वर्ग उन संन्यासियों का होगा, जो घर में भी संन्यास लेने की हिम्मत नहीं जुटा सकते और जो लोग आश्रम में लंबे समय के लिए आने की स्थिति में नहीं हैं, ऐसे लोगों के लिए- जितने समय के लिए संन्यास लेना हो उतने समय के लिए वे आश्रम में आएं और संन्यास ले लें- महीनेभर के लिए, दो महीनेभर के लिए वे संन्यास ले लें! महीनेभर के बाद वे अपने घर अपने पुराने कपड़ों में चले जाएंगे। महीनेभर वे संन्यासी की तरह रहेंगे, महीनेभर के बाद वे साधारण कपड़ों में लौट जाएंगे। इरादा मेरा यह है कि अधिकतम लोगों के लिए सर्वाधिक संन्यास सुलभ हो सके। यानी ऐसा न हो कि संन्यास इतना सख्त हो, उसकी शर्तें इतनी ज्यादा हों कि बहुत कम लोगों के लिए संभव हो सके। अभी क्या है- बुरी चीज बेशर्त उपलब्ध है- अधिकतम लोगों के लिए। अच्छी चीज सशर्त उपलब्ध है- बहुत कम लोगों के लिए। इसलिए स्वभावतः है कि दुनिया अच्छी न हो पाए और बुरी हो जाए। अगर किसी को बुरा होना है तो कोई शर्त ही नहीं है। और अच्छा होना है तो हजार शर्तें हैं। यह तो बहुत महंगे हिसाब हैं। इस हिसाब को तोड़ना पड़ेगा। हमें अच्छे होने के लिए भी कम-से-कम शर्तें कर देनी पड़ेंगी- न्यून, जितनी न्यून हो सके। मिनिमम पर उसको ठहरना होगा। इसलिए मैंने तीन बातें कीं। इसमें सबके लिए उपाय हो जाता है। जो घर में भी कपड़ा बदलने में डरता है वह भी एक महीने; दो महीने के लिए, साल में, दो साल में जब सुविधा होगा, कर लेगा। शायद एक-दो दफा महीनेभर रहने के बाद उसकी हिम्मत बढ़ जाए और वह घर में आकर कपड़ा बदल ले। जो आजीवन

जाना चाहता है, उसके लिए दूसरा इंतजाम कर देना है। जो आजीवन गया है वह भी मेरे लिए पीरियाडिकल, सावधिक है, वह अपनी तरफ से भले गया हो। कल वह कहता है, मैं वापस लौटना चाहता हूं तो उसकी कोई रोक न होगी, न उसकी निंदा होगी। अब तक क्या हुआ है? संन्यासी की जो व्यवस्था है हमारी उसमें एंट्रेस, प्रवेश है, एक्जिट, निकास है ही नहीं। उसमें आदमी प्रविष्ट हो जाए तो वापस नहीं लौटे। वापस लौटे तो हम उसकी निंदा करेंगे। सारा समाज उसका दुश्मन हो जाएगा और हर आदमी कहेगा कि अपराध हो गया। यह इतना खतरनाक है कि एक आदमी को सोचने का मौका ही नहीं बचता इस पर। और संन्यासी हुए बिना कैसे जाना जा सकता है कि मुझे भीतर रहना है कि नहीं रहना है? बाहर से निर्णय करना पड़ता है मकान के कि आप भीतर आएं तो पक्की कसम खाकर आएं कि बाहर नहीं निकल सकेंगे। और भीतर जाकर हो सकता है कोई कठिनाई हो। हो सकता है तुम्हें न ठीक पड़े। तो हम जितने स्वागत से संन्यास देंगे उतने स्वागत से विदा भी करेंगे। और यह अपेक्षा रखेंगे कि तुम फिर वापस लौट सकोगे। पर यह लौटना भीतरी होगा, तुम्हें लगे तो; ताकि सभी संन्यास की दिशा में अपनी सामर्थ्य के अनुसार जा सकेंगे, ऐसा ख्याल है। और मेरा मानना है कि सर्वाधिक श्रेष्ठ और सर्वाधिक महत्वपूर्ण घर में रहकर संन्यास लेना सिद्ध होगा। साधना वहां अद्भुत परिणाम लाएगी और जल्दी परिणाम लाएगी। चूंकि तुम घर की जिंदगी में कोई फर्क नहीं लाते हो, इसलिए घर के लोग दो-चार दिन में राजी हो जाएंगे। ज्यादा देर नहीं लगेगी। क्योंकि उनकी जिंदगी में तुम कोई फर्क लाते नहीं। संन्यासी के प्रति परिवार का, मां का, पिता का, पत्नी का, पति का सबका भय सदा से रहा है। इसलिए पूरी सोसायटी, बड़े मजे की बात है कि संन्यासी को आदर देती है, लेकिन संन्यास के खिलाफ लड़ती रहती है। बेटा चोर हो जाए तो बाप को समझ में आ जाता है, वह बर्दाश्त कर लेता है। संन्यासी हो जाए तो बहुत मुश्किल हो जाती है। उसका कुल कारण इतना है कि कोई चोर भी हो जाए तो भी घर छोड़कर नहीं भाग सकता। संन्यासी घर छोड़कर भाग सकता है। वह ज्यादा दुःखद सिद्ध होता है। पत्नी है, उसके लिए भय हो जाता है कि पति घर छोड़कर भाग जाएगा। बच्चे हैं छोटे, वे भी भयभीत हो जाते हैं। और तुम्हें भी तो गिल्ट, अपराध अनुभव होता है कि उनको तुम छोड़कर जा रहे हो। और इसलिए मैं मानता हूं कि पुराने दिनों में संन्यासियों का जो बड़ा वर्ग था उनमें पचहत्तर प्रतिशत लोग थोड़े वायलेंट, हिंसक लोग थे। नहीं तो इतनी आसानी से नहीं जा सकते थे। हिंसक वृत्ति थी। उन्होंने किसी तरह का मजा लिया पत्नी को कष्ट देने में, बच्चों को कष्ट देने में। रस है उसमें थोड़ा। पचहत्तर प्रतिशत संन्यासी बहुत गहरे में किसी तरह का रिवेंज, बदला ले रहे हैं। वे जिनको दुःख देकर जा रहे हैं, उनसे रिवेंज ले रहे हैं। यह तो आज मनोविज्ञान भी कहता है कि जो लोग आत्महत्या करते हैं वे भी अपने को मारने के लिए कम करते हैं, जो जिंदा रह जाएंगे उनको दुःख देने के लिए ज्यादा करते हैं। जैसे कि एक पत्नी धमकी दे रही है कि मैं आत्महत्या कर लूंगी। वह यह नहीं कह रही है कि मेरी जिंदगी बेकार हो गयी है। वह कह रही है कि तुम्हें सदा के लिए अपराधी छोड़ जाऊंगी कि मैंने तुम्हारे लिए आत्महत्या की। तुमने ऐसा काम किया कि मुझे आत्महत्या करनी पड़ी। मैं जिंदगीभर तुम्हें सताऊंगी। यह भाव तुम्हें जिंदगीभर सताएगा कि मैंने आत्महत्या की। मेरी कमी भी सताएगी, मेरी आत्महत्या भी सताएगी। तो यह बड़े मजे की बात है, आत्महत्या करनेवाले लोग लगते हैं कि सेल्फ पनिशमेंट, स्वयं की सजा कर रहे हैं, पर यह भी दूसरे को पनिशमेंट देने की कोशिश है उनकी। इसलिए जब मैं संन्यास की बात करता हूं तो तुम्हें चिंता होगी, परेशानी होगी लेकिन एक वर्ष में, दो वर्ष में आहिस्ता-आहिस्ता रास्ते पर आ जाएगी बात। इसलिए आ जाएगी कि मेरे संन्यासी पहले से बेहतर आदमी हो जानेवाले हैं। वह अगर पति थे तो बेहतर पति हो जानेवाले हैं, पिता थे तो बेहतर पिता हो जानेवाले हैं, पत्नी थी तो बेहतर पत्नी हो जानेवाली है। और मैं मानता हूं कि एक व्यक्ति घर में संन्यासी होगा तो वह न्यूक्लियस, प्रेरणा-केंद्र बन जाएगा। धीरे-धीरे वह पूरा परिवार संन्यास के इर्दगिर्द आ जाएगा। फिर कोई बाधा नहीं मानता हूं। तुम्हारा विवेक जो कहे, सोचें! इस पर किसी का भी मन होता हो- तो सोचे! वस्त्रों का रंग गेरुवा ही क्यों चुना जाए?

गेरुआ चुनने के बहुत कारण हैं। एक तो कारण यह है कि वह संन्यासी का पुराना रंग है। सफेद चुना जा सकता है लेकिन सफेद चुनकर तुम पर कोई चोट नहीं पड़ेगी। सफेद सहज ही पहना जा सकता है, सफेद चुनने में कोई चोट नहीं पड़ेगी। सफेद सहज ही पहना जा सकता है, कोई अड़चन नहीं आएगी। गेरुआ जानकर चुना है; क्योंकि मैं चाहता हूं कि तुम्हें संन्यास की रिमेंबरिंग, याद बनी रहे। तुम जहां से निकलो, सारी सड़क उत्सुक हो जाए और तुम्हें भी पता चले कि लोग देख रहे हैं, और तुम भी अपने को देख सको। मैं तुमको बेहोशी में नहीं छोड़ना चाहता। इससे तुम्हें होश का तीर चुभ जाएगा।

सफेद कलर में रहें तो वह भी अलग होता रहेगा?
वह ज्यादा अलग नहीं होगा। सफेद लुंगी सहज ही पूरा दक्षिण पहनता है।
ऐसे ऊपर चादर भी डाल लेते हैं। उससे अंतर पड़नेवाला नहीं है और उससे क्या फर्क पड़ता है! मैं सफेद चुनता तो यह पूछ सकते थे कि सफेद क्यों चुना? इससे क्या फर्क पड़ता? कुछ तो चुनना पड़ेगा मुझे! तो आप यह पूछ नहीं सकते कि सफेद क्यों चुना? सफेद उतना आंख को दिखाई भी नहीं पड़ता। एक सड़क से तुम सफेद कपड़े पहनकर निकलो तो, और एक सड़क से तुम गेरुआ कपड़े पहनकर निकलो, तो गेरुआ कपड़े में नब्बे मौके दिखायी पड़ने के हैं, सफेद कपड़े में दस मौके! यह जो बात कर रहा हूं- तो चाहता यह हूं कि तुम्हें मैं थोड़ी दिक्कत में डालूं। तुम्हें दिक्कत में पड़ना जरूरी है। वह दिक्कत ही तुम्हारे लिए याद बनेगी। इसलिए ज्यादा-से- ज्यादा दिक्कत में डालने का ख्याल है। इसलिए एक माला भी डाल दी गले में, ताकि तुम्हारे लिए शक ही न रह जाए किसी को। नहीं तो शौक में भी इस वक्त गेरुआ पहना जाने लगा है। इसलिए एक माला जोड़नी पड़ेगी। नहीं तो इस वक्त बंबई में लड़कियां शौक में भी गेरुआ पहने हुए हैं। माला और गेरुआ संन्यासी को दोनों ख्याल देनेवाला हो जाएगा।
सब लोगों ने और सारे देश ने यदि संन्यास व्रत ले लिया तो कल यदि देश पर किसी ने आक्रमण कर दिया तो क्या होगा?
संन्यासी लड़े, संन्यासी से ज्यादा दुनिया में कोई भी नहीं लड़ सकता। क्योंकि संन्यासी का मतलब यह है कि जो जानता है कि आदमी अमर है। उसको तो लड़ने का कोई भय ही नहीं। संन्यासी जैसा लड़ सकता है वैसा दुनिया में कोई कभी लड़ ही नहीं सकता। अहिंसावादी का इतना ही मतलब होता है कि अपनी तरफ से किसी को मारने नहीं जाता; लेकिन अहिंसावादी का मतलब यह नहीं होता है कि अपने को पिटवाने के लिए निमंत्रण देता है। वह भी हिंसा है। अगर कोई मुझे जूता मारता है और मैं बैठे हुए सहता हूं तो यह भी हिंसा सही जा रही है। यह अहिंसा नहीं है। संन्यासी किसी को मारने नहीं जाता है। संन्यासी को अगर मारोगे तो उससे ज्यादा करारा जवाब इस दुनिया में कोई नहीं दे सकता। मैं तो संन्यासी को सैनिक मानता हूं!

नव-संन्यास क्या?
तीसरा प्रवचन

संन्यास और संसार

संन्यास और संसार संसार को छोड़कर भागने का कोई उपाय ही नहीं है, कारण
हम जहां भी जाएंगे वह होगा ही, शक्लें बदल सकती हैं। इस तरह के त्याग को मैं संन्यास नहीं कहता। संन्यास मैं उसे कहूंगा कि हम जहां भी हों वहां होते हुए भी संसार हमारे मन में न हो। अगर तुम परिवार में भी हो तो परिवार तुम्हारे भीतर बहुत प्रवेश नहीं करेगा। परिवार में रहकर भी तुम अकेले हो सकते हो और ठेठ भीड़ में खड़े होकर भी अकेले हो सकते हो। इससे उल्टा भी हो सकता है कि एक आदमी अकेला जंगल में बैठा हो लेकिन मन में पूरी भीड़ घिरी हो और ठेठ बाजार में बैठकर भी एक आदमी अकेला हो सकता है। संन्यास की जो अब तक व्यवस्था रही है उसमें गलत त्याग पर ही जोर रहा है। उसके दूसरे पहलू पर कोई जोर नहीं है। एक आदमी के पास पैसा न हो तो भी उसके मन में पैसे का राग चल सकता हैं। इससे उल्टा भी हो सकता है कि किसी के पास पैसा हो और पैसे का कोई लगाव उसके मन में न हो। बल्कि ज्यादा संभावना दूसरे की ही है, पैसा बिल्कुल न हो तो पैसे में लगाव की संभावना ज्यादा है। पैसा हो तो पैसे से लगाव छूटना ज्यादा आसान है। जो भी चीज तुम्हारे पास है उससे तुम आसानी से मुक्त हो सकते हो। असल में तुम मुक्त हो ही जाते हो। सिर्फ गरीब आदमी को ही पैसे की याद आती है। अगर किसी अमीर को भी आती है तो उसका कुल मतलब इतना है कि अभी भी वह अमीर नहीं हो पाया है। तो मैं अमीर की परिभाषा यही करता हूं कि जिसे अब पैसे की याद ही न आए और गरीब मैं उसको कहता हूं कि जिसे पैसे की याद बनी रहे। भूखे आदमी को भोजन की याद आती है और भरे पेट वाले आदमी को भोजन की याद नहीं आती है, जब तक कि भूखा आदमी भोजन के लिए पागल और विक्षिप्त न हो। अगर "मैनिया" हो तो बात अलग, नहीं तो भरा पेट आदमी भोजन को भूल जाता है। जब तुम नंगे खड़े होगे तब तुम्हें कपड़े की याद आएगी, जब तुम कपड़े पहने रहते हो तब तुम्हें कपड़े की बिल्कुल याद नहीं आती है और नहीं आनी चाहिए। कोई आवश्यकता ही नहीं है। मन का नियम ही यही है। जो नहीं है उसकी वह तुम्हें चेतावनी देता है, उसकी वह खबर कर देता है कि तुम नंगे हो, कपड़े नहीं है। तुम्हें सर्दी लग रही है या तुम भूखे बैठे हो। पेट में भूख दौड़ रही है। और भोजन नहीं है। मन का काम ही "रेडार" की तरह है कि वह तुम्हें खबर दे कि क्या हो रहा है और क्या नहीं हो रहा है। जो चीज तुम्हारे पास है उसे भूलना आसान है और जो तुम्हारे पास नहीं है उसे भूलना जरा कठिन है। अब तक संन्यास का अर्थ बिल्कुल त्याग समझा जाता रहा है। इसका मतलब हुआ कि जो आदमी छोड़कर चला जाता है, वह संन्यासी है। मेरे विचार से वह आदमी त्यागी होगा, संन्यासी नहीं। संन्यास त्याग पर एक और शर्त लगा देता है। वह शर्त यह है कि त्याग ठीक भी हो। अब ठीक त्याग क्या होगा। ठीक त्याग मेरी दृष्टि में वह है कि तुम कुछ भी छोड़कर नहीं जाते, लेकिन तुम्हारे भीतर से सब छूटना आरंभ हो जाता है। पत्नी से मुक्त होने के लिए पत्नी को छोड़कर जाने का कोई अर्थ नहीं, उसके साथ रहते हुए भी तुम पत्नी के भाव से मुक्त हो सकते हो। बेटे को छोड़कर भागने की कोई आवश्यकता नहीं है, लेकिन उसके पास रहते हुए तुम पिता का जो आग्रहपूर्ण रुख है, उससे मुक्त हो सकते हो। तो संसार ही संन्यास बन सकता है। ऐसी मेरी दृष्टि है। जिस संन्यास की मैं चर्चा कर रहा हूं, उसको संसार से विपरीत और भिन्न और अलग नहीं रखना है। उसे रखना है ठीक संसार में। और यह केवल अगर शाब्दिक या दार्शनिक स्तर पर होता तो मैं इसकी बहुत ज्यादा चिंता न करता। इसके व्यापक परिणामों में फर्क पड़ेगा। जब संन्यासी को संसार से तोड़ लेते हैं तो हम दुनिया को दो भागों में बांट देते हैं। एक ओर संन्यासी हो जाते हैं, एक ओर संसारी हो जाते हैं। संसारी जाने-अनजाने अपने मन में यह मान लेता है कि मुझे तो बुरा होने की सुविधा है, क्योंकि मैं संसारी हूं। वह चोरी करे, कालाबाजारी करे, वह झूठ बोले तो उसको तर्कसंगत लगता है, उसके पास जस्टिफिकेशन होता है। अपने मन में वह कहता है कि संसारी हूं ये मुझे करने ही पड़ेंगे। और अगर संन्यासी कहे कि यह

गलत है, तो वह कहता है कि अगर आप संसार में रहेंगे तो आपको भी करना पड़ेगा। आप नहीं कर रहे हो, क्योंकि आप सब छोड़कर चले गए हो। मुझे तो करना ही पड़ेगा। क्योंकि उसके बिना यहां जिया नहीं जा सकता है। जब हम संसार को छोड़ देते हैं तब हम संसारी के अच्छे होने में बाधा डालते हैं। और उसके बुरे होने के लिए संगति जुटाते हैं, जस्टिफिकेशन जुटाते हैं। उसको लगता है कि यहां बुरा होना ही पड़ेगा क्योंकि वह कह भी सकता है कि अगर यहां बुरा होना अनिवार्य नहीं है तो संन्यासी छोड़कर क्यों भाग गया है। वह यहीं अच्छा हो जाए। तो संसार में होना और बुरा होना पर्यायवाची हो जाता है। यह बड़ी खतरनाक बात है। खतरनाक इसलिए है कि दुनिया में अनेक लोग संन्यासी होंगे और जो संन्यासी होंगे वे भी संसारियों पर ही निर्भर होंगे। अगर चालीस करोड़ का देश संन्यासी हो जाए तो एक दिन एक भी संन्यासी जीवित नहीं रह सकता। जबकि करोड़ों लोग संसारी हों तब ही हम दस-पंद्रह, सौ-दो-सौ संन्यासियों को पाल सकते हैं। तो जो संन्यासी अपने जीवन के लए संसारी पर आधारित होता हो तो उसका संसार से मुक्त होना बिल्कुल ना-समझी की बात है। वह मुक्त नहीं है। वह विरोध करता है कि कालाबाजारी बुरी है और काला बाजारी पर ही उसका आश्रम भी होगा। और कोई उपाय नहीं। वह विरोध करता हो जिन चीजों का, उन्हीं चीजों को करनेवाले पर उसका जीवन निर्भर होगा। यहां वह विरोध भी करता रहेगा, लेकिन वह आश्रित होगा। और जो संन्यासी किसी पर आश्रित हो, वह स्वतंत्र नहीं हो सकता है। ऊपर से उसकी स्वतंत्रता दिखाऊ होगी, वह गहरे में फंसा हुआ होगा, अगर वह जैन संन्यासी है तो वह जैनियों का गुलाम होगा, हिंदू संन्यासी है तो हिंदुओं का गुलाम होगा, मुसलमान संन्यासी है तो मुसलमानों का गुलाम होगा। क्योंकि जिनके कारण वह जी रहा है उनकी धारणाएं, उनके नियम, उनकी मर्यादाएं उसे स्वीकार करनी पड़ेंगी। वह इंचभर यहां-वहां हिल नहीं सकता और संन्यासी गुलाम हो जाएगा। अगर संन्यासी गुलाम हो गया तो वह संन्यासी नहीं रहा। स्वतंत्रता तो उसका मूल आधार है। और इस प्रकार संसारी अपनी बुराई में निश्चिंत हो जाएगा। उसे लगेगा कि उसे बुरा होना ही पड़ेगा, इससे बचने का कोई रास्ता नहीं। वह कभी संन्यासी हो जाएगा तो ही बुराई के बाहर हो पाएगा। लेकिन सारा जगत संन्यासी नहीं हो सकता। इमाइल कुए का एक बहुत अद्भुत नियम है कि जो नियम सार्वभौम न बनाया जा सके, वह नियम नैतिक नहीं कहा जा सकता। इसे समझ लें कि नियम सार्वभौम बनाने से अपने आप टूट जाता है। जैसे झूठ बोलना है। अगर सारी दुनिया झूठ बोलने लगे, तो झूठ बोलना बिल्कुल बेकार हो जाएगा। झूठ बोलना तभी तक ठीक चल सकता है कि जब तक कुछ लोग सच बोलते हैं और सच बोलने में भरोसा रखते हैं। झूठ बोलनेवाला भी सच बोलनेवाले पर जिंदा रहता है, नहीं तो जिंदा नहीं रह सकता है। अगर इस बार हम सारे लोग झूठ बोलने लगें तो झूठ बिल्कुल ही बेमानी हो जाएगा। उसका कोई मतलब ही नहीं रह जाएगा, क्योंकि मैं बोलूंगा और आप जानते हैं कि मैं झूठ बोल रहा हूं और मैं बोल रहा हूं तब मैं जानता हूं, दुनिया जानती है कि झूठ बोला जा रहा है। तब उसका कोई मतलब ही नहीं रहा। मेरे झूठ का लाभ तब तक है, जब तक मैं दिखा पाऊं कि मैं सच बोल रहा हूं और दूसरा भी भरोसा करता है कि नहीं, सच भी बोला जाता है। तब ही झूठ रहेगा। अगर सब लोग चोर हो जाएं, तो चोरी बेकार हो जाएगी। चोरी तभी तक चलती है जब तक कुछ लोग चोर नहीं हैं। इसलिए यह एक ख्याल बहुत उचित है कि जो नियम सार्वभौम नहीं बन सकता वह नैतिक नहीं बन सकता। अगर सारे लोग सत्य बोलें तो कोई बाधा नहीं आ सकती। इससे कोई नुकसान नहीं होगा। लेकिन सारे लोग झूठ बोलें तो नहीं चलेगा, अगर सारे लोग संसारी हों तो बाधा नहीं आती, लेकिन सारे लोग संन्यासी हों तो नियम समाप्त हो जाएगा। इसलिए मैं इस तरह के संन्यास को जो जीवन को छोड़कर भागता है, झूठ और चोरी के साथ ही गिनता हूं। मैं फर्क नहीं करता, क्योंकि वह अनैतिक नियम है। उसके होने के लिए संसारी पर निर्भर होना जरूरी है, जबकि संसारी के लिए संन्यासी पर निर्भर होना जरूरी नहीं। अगर कल संन्यासी न हो तो संसार अपने रास्ते पर चलता रहेगा। कोई बाधा नहीं पड़ेगी। किंतु संसारी न हो तो संन्यासी एक क्षण भी नहीं चलेगा, वह तत्काल टूट जाएगा। उसको एक इंच भी चलने का उपाय नहीं होगा। इसके भी घातक परिणाम हुए और यदि अच्छा आदमी जंगल में चला जाए या संसार छोड़ दे तो दुनिया को बुरा बनाने का

साधन बनता है। दुनिया तो चलेगी। उसे बुरे लोग चलाएंगे, साथ अच्छे लोग भाग जाएंगे। इसलिए मैं कहता हूं कि अच्छे आदमी के अच्छे होने का एक कर्त्तव्य और हिस्सा यह भी है कि वह उन जगहों पर जहां बुरे आदमी हैं, वहां से भागे न। सब अच्छे आदमी भाग जाएं तो इस संसार के इतने बुरे होने का जिम्मेवार कौन है? इसका जिम्मेवार बुरा आदमी कम है, इसके जिम्मेवार भागे हुए अच्छे आदमी ज्यादा हैं। इसलिए भी मैं मानता हूं कि संन्यास जो है वह संसार के बीच फलित होना चाहिए। उसका फूल यहीं खिलना चाहिए- दुकान में, दफ्तर में, बाजार में, घर में उसका फूल खिलना चाहिए। इसमें भागने की आवश्यकता नहीं। फिर मेरी समझ है कि जो जीवन इतना शक्ति- शाली है वह पलायनवादी नहीं होना चाहिए। यदि कहते हैं कि संन्यास बड़ी अद्भुत शक्तिशाली चीज है तो संसार से भयभीत नहीं होना चाहिए, क्योंकि भयभीत सिर्फ कमजोर लोग होते हैं। संन्यासी भयभीत है पूरे वक्त कि वह यदि संसार में खड़ा हो गया तो बिगड़ जाएगा। मतलब यह हुआ कि संसार में बिगाड़नेवाली शक्तियां ज्यादा प्रबल हैं और अच्छे आदमी की शक्तियां नपुंसक हैं। यह बड़े मजे की बात है कि हम बहुधा कहते हैं, बुरे आदमी की संगति में तुम बिगड़ जाओगे। लेकिन हम कभी यह नहीं सोचते कि जब एक अच्छा आदमी बुरे आदमी की संगत करता है तो उसमें एक बुरा आदमी भी तो अच्छे आदमी की संगत करता है। लेकिन बिगड़ता हमेशा अच्छा आदमी है। हम कभी यह नहीं कहते कि यह अच्छे आदमी की संगत बुरे आदमी से हो रही है तो बुरा आदमी सुधर जाएगा। हम हमेशा यही कहते हैं कि अच्छा आदमी बिगड़ जाएगा। जिस दुनिया में अच्छाई कमजोर हो उस दुनिया में अच्छाई बहुत दिन तक नहीं रह सकती है, सिर्फ धोखा हो सकता है। मेरा मानना यह है कि अच्छाई को प्रमाण देना चाहिए कि वह भी प्रबल है, शक्तिशाली है। लेकिन वह प्रमाण कहां दे? जंगल में कोई प्रमाण नहीं और जीवन की सारी प्रामाणिकता संबंधों में है- वह अंतर्संबंधों में है। यदि मैं जंगल में बैठकर यह कहूं कि मैं सच बोलता हूं तो कोई अर्थ नहीं रखता, क्योंकि सत्य बोलना सदैव किसी से संबंधित है। मैं अकेले में झूठ बोलता हूं या सच बोलता हूं, यह कोई मतलब नहीं रखता। जब तक कि कोई अन्य व्यक्ति वहां प्रमाण के लिए न हो, और अगर दूसरा भी वहां मौजूद न हो और मैं सच बोलता हूं तो मेरे किसी त्वार्थ को हानि नहीं पहुंचेगी, क्योंकि मैं सब त्वार्थ को छोड़कर भाग आया हूं। तब भी सच बोलने का कोई मतलब नहीं, न मेरे पुत्र को हानि पहुंचती है, न मेरा घर नीलाम होता है, न मेरी दुकान बंद होती है। अब मेरे पास न पुत्र है, न घर है, न मेरे पास दुकान है। अब मैं सच बोल सकता हूं। ऐसे तो कोई भी सच बोल सकता है। सच जो बोल रहा है उसमें बाधा नहीं है कि सच उसके त्वार्थ को हानि पहुंचाता है। और संन्यासी जो सब छोड़कर चला गया, तो अब सच बोल सकता है। मेरा अपना मानना यह है कि ऐसे सच का कोई मूल्य नहीं और इसको जरूरत भी नहीं पड़ती, क्योंकि जहां जरूरत थी वह उस अवसर को छोड़कर चला आया है। इस प्रक्रिया में संन्यासी कमजोर हुआ है और संसारी बुरा। इससे जो संयोग पैदा हो रहा है और जो समाज पैदा हुआ वह अच्छा समाज नहीं है। जो पहला कहना मेरा यह है कि जो संसारी है उसे वहीं संन्यासी हो जाना है। उसे कुछ भी छोड़ने की आवश्यकता नहीं, सिर्फ उसे अपने में परिवर्तन लाना है। परिवर्तन के लिए दो उपाय हैं। एक तो परिस्थिति को बदल दो या मन की स्थिति को। और जो आदमी परिस्थिति बदलने पर जोर देता है, मैं यह मानता हूं कि वह आध्यात्मिक नहीं है। वह भौतिकवादी है। क्योंकि परिस्थितियां सब भौतिक हैं। मैं कहता हूं कि अगर मुझे इस घर के बाहर जंगल में रहने को मिल जाए तो मन बड़ा पवित्र रहेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि घर मुझे और मेरे मन को अपवित्र करता है और जंगल मुझे पवित्र करता है। जोर मेरा मकान पर है, मन पर नहीं। संसारी कहता है कि जब तक मेरे पास लाख रुपए न हों, तब तक मुझे अशांति रहती है और अगर दस लाख हो जाएं तो शांति होती है। मतलब यह कि भौतिक परिस्थिति में फर्क हो जाए तो मेरा मन बड़ा शांत हो जाएगा। वह भी परिस्थिति को बदलने की बात कर रहा है। उसका कहना है कि छोटे पद पर हूं तो तकलीफ है और बड़े पद पर आ जाऊंगा तो सब ठीक हो जाएगा। संसारी की भाषा भी परिस्थिति को बदलने की है और संन्यासी की भी, तो फर्क कहां है! संन्यासी उस दिन फर्क शुरू करता है, जब वह कहता है कि मैं अब परिस्थितियों की चिंता छोड़ता हूं, मैं अपने को बदलता हूं, मन की

स्थिति को बदलता हूं। परिस्थिति कैसी होगी, यह गौण है, मैं अपने मन को बदलता हूं, मन की स्थिति को बदलता हूं। और मनः स्थिति को बदलना हो तो प्रतिकूल परिस्थिति में बदलने में राज एवं रहस्य है। क्योंकि वहां संघर्ष है, चुनौती है। अगर एक आदमी बाजार में ईमानदार होने की धारणा करता है, तो ईमानदारी बड़ी बलवान पैदा होगी, लेकिन पैदा होने में कठिनाई होगी। संकल्प बड़ा श्रम लेगा। उस आदमी को बड़ी तकलीफें झेलनी पड़ेंगी। लेकिन धर्म सस्ता नहीं है, उसके लिए बड़ा मूल्य चुकाना पड़ेगा। जिसको हम संन्यासी कह रहे हैं वह सस्ते धर्म में जी रहा है, वह मूल्य चुका नहीं सकता। और जहां मूल्य चुकाना पड़ता है, जहां चुनौती होती है, वहां वह भाग जाता है। एक तो, मैं संन्यासी को खड़ा करना चाहता हूं, इसी संसार में। इसका और भी कारण है। मेरे देखने में ये बातें निरंतर साफ होती गई हैं। अब दुनिया में ऐसा संन्यासी नहीं टिक सकेगा जो प्रोडक्टिव, उत्पादक नहीं है। तो रूस में संन्यासी समाप्त हो गया, क्योंकि लोगों ने निर्णय कर लिया कि जो पैदा करेगा वह खाएगा। बीस करोड़ का देश है रूस। वहां सैकड़ों-हजारों संन्यासी थे, ईसाई फकीर थे, वे सब खत्म हो गए हैं। चीन में बौद्ध, ईसाई, मुसलमान फकीर सब खत्म हो रहे हैं। वे अब नहीं बच सकते हैं। जहां-जहां समाजवादी चिंतन बढ़ेगा और जहां-जहां यह विचार आएगा कि जो आदमी पैदा नहीं करता वह खाने का हकदार नहीं है, वहां संन्यासी दुश्मन मालूम होंगे। आज भी आधे जगत में संन्यासी खत्म हो गए हैं, बाकी आधे जगत में अधिक दिन तक नहीं चल सकते हैं, क्योंकि जिसको हम संन्यासी कहते थे अब उसको चीन में, रूस में विदा किया जा रहा है, क्योंकि वह कुछ करता नहीं। कहते हैं कि भजन-कीर्तन करता है तो उसका अपना त्वार्थ है। उसके लिए दूसरे क्यों मेहनत करें! थाइलैंड जैसे देश में चार करोड़ आबादी है और बीस लाख संन्यासी हैं। चार करोड़ में बीस लाख संन्यासी हैं, यह शोचनीय है। अब थाइलैंड इनकार करेगा, बल्कि इनकार कर रहा है। थाइलैंड की असेंबली में यह प्रश्न था कि अब जो कोई भी संन्यासी होना चाहेगा वह पहले जब तक सरकार से आज्ञा न ले तब तक उसे संन्यासी नहीं होने देना चाहिए। क्योंकि अब इन संन्यासियों को कौन पालेगा, ये क्या खाएंगे, क्या पिएंगे, कैसे जिएंगे? इस देश में आने वाले बीस साल में वह सवाल उठेगा, ज्यादा समय नहीं है। मैं मानता हूं कि संन्यास इतनी अद्भुत चीज है, वह नष्ट नहीं होनी चाहिए। अब उसको बचाने का एक ही उपाय है। हम नॉन-प्रोडक्टिव दुनिया से प्रोडक्टिव दुनिया में संन्यास को लाएं, उसे अनुत्पादक से उत्पादक बनाएं। और मेरी दृष्टि से संसारी पर संन्यासी निर्भर न हो, वह स्वावलंबी हो और उत्पादक हो तब ही उसका भविष्य है, अन्यथा कोई भविष्य नहीं। तीसरी बातः अभी तक यह स्वीकार रहा कि संन्यास जिन लोगों ने लिया है, उनको आनंद मिला। संदिग्ध है यह बात। लेकिन जिनको छोड़कर वे भाग गए, उनको दुःख मिला, यह असंदिग्ध है। लेकिन हम हिसाब कभी लगाते नहीं। यदि हम हिसाब लगाएं और सिर्फ भारत का ही हिसाब लगाएं तो पता लगेगा कि करोड़ों परिवारों ने इन संन्यासियों की वजह से दुःख झेला है, जितना कि डाकुओं की वजह से नहीं झेला। जितना दुःख चोरों की वजह से नहीं झेला, जितना बड़े-बड़े हत्यारों ने नुकसान नहीं पहुंचाया उतना संन्यासियों ने पहुंचा दिया। लेकिन यह धार्मिक तरह का दुःख है। और देनेवालों को हम कभी कहते नहीं कि तुम दुःख दे रहे हो। महावीर के समय में पचास हजार संन्यासी थे, ये पचास हजार परिवारों को छोड़कर आए हुए लोग ही नहीं, बल्कि उनके बच्चे भी हैं, उनकी पत्नियां भी हैं तथा किसी के बूढ़े मां एवं बाप भी हैं। वे सब-के-सब आज विदा हो गए। इसको भी झेला गया, क्योंकि हमारी यह मान्यता है कि यह महान कार्य है, इसलिए हम कष्ट झेलें। मजे की बात यह है कि जो छोड़कर आया है, उसे भी आनंद मिला कि नहीं, पक्का नहीं होता। किंतु जिन्हें वह छोड़कर आया है उन्हें वह भारी दुःख पहुंचाता है। और ऐसा संन्यास, जिससे कहीं भी दुःख पैदा होता है या किसी भी कारण से दुःख पैदा होता हो तो मैं नहीं मानता कि वह धार्मिक है। वास्तव में धर्म का मतलब यह है कि जिसके कारण किसी को भी दुःख न हो, न्यूनतम दुःख की संभावना पैदा हो। अब ऐसा संन्यासी कहता हो कि मैं अहिंसक हूं तो मैं नहीं मानूंगा, क्योंकि हिंसा बड़ी गहरी है। अगर छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर आया है और साथ ही पत्नी को छोड़कर आया है तो उनके साथ जो

हिंसा हुई है, यह जिम्मेवारी उसकी है। मैं ऐसे संन्यास के भी खिलाफ हूं, जिससे हिंसा और दुःख पैदा होता है। मेरी पहली धारणा यह है कि जो संन्यास अभी प्रारंभ किया है, उसमें पहली बात तो यह है कि जो जहां है वहीं घोषणा करे, वह कपड़े भी बदले और नाम भी बदले। बदलने से उसकी पूरी व्यवस्था में पृथक्ता पैदा हो जाती है। एक, नाम बदलने से उसका जो पुराना तादात्म्य था उसके व्यक्तित्व से वह टूट जाएगा। कपड़े बदलने से उसे चौबीस घंटे याद रहता है और दूसरे भी उसे चौबीस घंटे याद दिलाएंगे कि वह संन्यासी है। यह स्मरण प्राथमिक रूप में बड़ा फायदे का है। नहीं तो वह भूल ही जाता है। लोग कहते हैं कि हम तो अंदर से ठीक हैं। लेकिन अंदर का स्मरण नहीं रह पाता है। और जो कपड़े बदलने में डर रहा है वह अपने को बदल पाएगा? इतनी हिम्मत कर पाएगा, इसकी संभावना बहुत कम है! नाम बदल देना है, ताकि चौबीस घंटे उसे स्मरण रहे। उसे कपड़े बदल लेने हैं, यह उसके संकल्प की घोषणा भी है। समाज के प्रति वह कहेगा कि मैं रहता तो यहीं हूं, लेकिन अब अपने जीवन को परमात्मा को समर्पित किया। काम जो करता था वही करूंगा, क्योंकि मैं किसी को दुःख नहीं देना चाहता हूं। लेकिन अब काम करने की मेरी निजी आकांक्षा थी, वह विदा हो गई। अब काम इसलिए कर रहा हूं कि उस काम के न करने से किसी को कोई दुःख न पैदा हो। नौकरी कर रहे हैं तो नौकरी करेंगे लेकिन नौकरी का मूल आधार बदल गया है। अब नौकरी मेरी महत्वकांक्षा और मेरे अहंकार का कोई हिस्सा नहीं है। अब इसका मूल आधार इतना रहा है कि वह किसी की जीवन-व्यवस्था के दुःख का कारण न बने। अब कारण बिल्कुल बदल गया है और जैसे-जैसे यह समझ बढ़ेगी वैसे- वैसे लगेगा कि काम जो मैं कर रहा हूं वह परमात्मा का काम है अब। मैं अपने बेटे को पाल रहा हूं, वह भाव छोड़ देना पड़ेगा। अब मैं परमात्मा के बेटे को पाल रहा हूं। अब मैं एक साधन हूं। इस संन्यास में साधन-मात्र होने की धारणा सबसे गहरी होगी। वह मेरा काम नहीं है, लेकिन मैं जिस स्थिति में हूं, उस स्थिति में वह काम अनिवार्य है। इससे बहुत फर्क पड़ेगा। जब तुम खुद कर रहे हो उस काम को तब और अब साधन-मात्र हो तब बहुत फर्क पड़ जाएगा। जैसे ही तुमने समझा कि तुम साधन-मात्र हो वैसे साक्षी होना संभव हो जाएगा। तुम अपने काम में साक्षी रह सकोगे। और जैसे ही समझा कि तुम साक्षी हो तो उस काम में होनेवाली चोरी, बेईमानी तुम्हें आकर्षित नहीं करेगी। क्योंकि अब तुम मालिक नहीं हो। उस काम में तुम केवल मालिक नहीं हो अब, तुमने जगत्- व्यवस्था पर सब छोड़ दिया है। अब तुम उसके बीच के केंद्र नहीं हो, यह धारणा गहरी होगी। साथ में ध्यान का प्रयोग चलेगा जो कि संन्यासी की मूल साधना होगी। संन्यास लेने का मतलब ही यह है कि ध्यान में गहराई बढ़े। ध्यान जारी हो और ध्यान से ही तुम्हारा संन्यास आना चाहिए कि तुम्हें लगे कि मैं अब इस जगह आ गया हूं कि जहां मैं साधन-मात्र हो गया हूं। ध्यान जितना बढ़ेगा, साधन का भाव जितना बढ़ेगा, साक्षी भाव जितना बढ़ेगा, उतना काम इस जगत में अभिनय की तरह हो जाएगा। करोगे काम, उठोगे, आओगे, जाओगे, न ही कहीं दौड़ोगे, न किसी को दुःख पहुंचाओगे, न ही तुम्हारी वजह से कहीं किसी को पीड़ा होगी। लेकिन लगेगा, तुम्हें जैसे कि सारा संसार एक बड़ा स्वप्न हो गया है और स्वप्न में तुम एक अभिनेता-मात्र रह गए हो। इसके गहरे परिणाम होंगे। रोज परिस्थितियां आएंगी जो प्रतिकूल होंगी। रोज उन परिस्थितियों में तुम्हें अपने संकल्प को, अपने साक्षीत्व को प्रगाढ़ और प्रखर करना होगा। उससे तुम्हारा बल बढ़ेगा, आत्मा पैदा होगी। तो एक तो संन्यास का यह रूप है। संन्यास को मैंने तीन हिस्सों में विभाजित किया है। यह काम-चलाऊ विभाजन है। संन्यास की मूल धारणा तो यही होगी जो मैंने कही। कुछ लोग ऐसे होंगे जिन पर वास्तव में कोई जिम्मेवारी नहीं है। अवकाशप्राप्त लोगों के पास अब कोई काम भी नहीं, अब उनके पास कोई दुकान भी नहीं, अब इन पर कोई ऐसी जिम्मेवारी भी नहीं, जिसके कारण इनके लिए यहीं खड़ा होना आवश्यक है। बल्कि यहां से हट जाएं, यह इनके लिए हितकर होगा। जैसे एक बूढ़ा आदमी है, अगर वह हट जाए तो घर के लिए भी सुविधापूर्ण होगा और उसके लिए भी सुविधापूर्ण होगा। कई क्षण ऐसे आ जाते हैं, जबकि हम व्यर्थ ही वहां होते हैं, जहां हमारा होना कष्ट देता है। वहां से चुपचाप उसे हट जाना चाहिए। जब तक हमारे होने से वहां सुख हो रहा है, तब तक हम साधन-मात्र रहें। एक समय आ जाता है कि घर में

सत्तर वर्ष का बूढ़ा आदमी और घर में सारे लोग अपने काम में लग गए हैं। अब वह साठ-सत्तर साल के बूढ़े आदमी में और तीस साल के लड़के में कोई मेल भी नहीं बैठता, बुद्धि का, विचार का भी, सोच का, समझ का भी। उनकी यात्रा ही मेल नहीं खाती। अब इन दोनों के बीच अकारण उपद्रव होता है। इसमें कोई अर्थ नहीं। इसमें कोई प्रेम फलित नहीं होगा। ऐसे वृद्ध हैं जिन पर कोई जिम्मेवारी नहीं। ऐसे युवक भी हो सकते हैं जिनके ऊपर कोई जिम्मेवारी नहीं। ऐसे व्यक्तियों के लिए आश्रम बनाना चाहता हूं। वह आश्रम भी उत्पादक होंगे, यह भी अनुत्पादक नहीं होंगे। उन आश्रमों की अपनी खेती होगी, अपना छोटा उद्योग होगा। कुछ भी हो, पैदा करेंगे। वे किसी पर निर्भर नहीं होंगे। जहां भी भागना होगा, वह भी दुनिया का एक हिस्सा होनेवाला है- वहां सामूहिक जीवन होगा। जो भी वहां पैदा होगा, उसके लिए संन्यासियों को कम-से-कम तीन घंटे काम करना होगा, वह जो काम कर सकें। यदि वृद्ध है और पढ़ा सकता है तो तीन घंटे पढ़ा दे। जो जिस प्रकार का काम कर सकता है, वह तीन घंटे का काम करे। बाकी समय का उपयोग अध्ययन, साधना व भजन-चिंतन में होगा। तीन घंटे काम करने पर संन्यासियों को किसी पर निर्भर न होना होगा। वे अपने लिए पैदा कर लेंगे। इस सामूहिक जीवन में कोई न ऊंचा होगा और न कोई नीचा। अगर वहां अस्पताल होगा तो वहां डॉक्टर, नर्स और चपरासी में कोई अंतर नहीं होगा। उनको खान-पान एक-सा मिलेगा। रहन-सहन एक-सा होगा। कपड़े एवं अन्य सुविधाएं एक-सी होंगी। उनकी पद-प्रतिष्ठा में कोई अंतर नहीं होगा। सिर्फ उनके काम में फर्क पड़ेगा। फर्क ऐसा होगा कि यदि कोई डॉक्टर है तो वह अपना डाक्टरी काम करेगा। चपरासी अपना काम करेगा। आश्रम में चपरासी छोटा नहीं होगा, और न डॉक्टर बड़ा होगा। इसलिए इस समूह-जीवन, कम्यून में आध्यात्मिक साम्यवाद का प्रयोग होगा। मेरा मानना यह है कि जब तक दुनिया को आध्यात्मिक साम्यवाद के प्रयोग नहीं मिलते हैं तब तक साम्यवाद से बचा नहीं जा सकता है। अब यह बड़े मजे की बात है कि भौतिकवाद ने तो दुनिया को साम्यवाद जैसी धारणा दे दी और अध्यात्म अभी तक साम्यवाद की धारणा नहीं दे सका। भौतिकवाद ने तो दिखा दिया कि हम सारी दुनिया को एक करके दिखाए देते हैं। लेकिन भौतिकवादी साम्यवाद से बड़ा नुकसान हो रहा है। अतः इस आश्रम में आध्यात्मिक साम्यवाद का प्रयोग होगा। यह एक ऐसी जगह होगी, जहां बिना किसी भेद के सारे लोग बराबर होंगे और फिर भी जिसको जो काम करना है, वह करता है। बुहारी लगानेवाला बुहारी लगाता है, प्राचार्य प्रिंसिपल का काम करनेवाला प्राचार्य का काम करता है। वहां स्कूल होगा, कॉलेज होगा, इंडस्ट्री होगी और एक छोटा नगर होगा। यह संन्यासियों का नगर होगा। संन्यासियों के इस नगर को हम संन्यासी और ध्यान की साधना के प्रचार का केंद्र बना देंगे। जो घरों में संन्यास लिए लोग हैं वे भी वर्ष में महीने-दो महीने के लिए इस सहजीवन में आकर रहेंगे। यहां से साधना की गहराई लेकर वापस लौट जाएंगे। यह दूसरे प्रकार का संन्यास होगा। तीसरे प्रकार का संन्यास उनके लिए है जो लोग इतना साहस और समझ नहीं जुटा पाते कि घर में ही रहकर संन्यासी हो जाएं। तो मैंने उनके लिए सामयिक संन्यास की कल्पना की है। वे कम्यून, आश्रम में आ जाएं और महीनेभर के लिए संन्यासी हो जाएं। जैसे जिंदगी चलती थी वैसी चलाएं। लेकिन इस महीनेभर की साधना, और कम्यून, आश्रम में रहना, इन सब का अनुभव उसके भीतर प्रवेश कर जाएगा। अभी हिम्मत नहीं जुटाते हैं। सालभर बाद, दो बार कम्यून में आने के बाद महीनेभर में वे हिम्मत जुटा लेंगे। तो उनके लिए सामयिक संन्यास की व्यवस्था करनी होगी कि वे कभी आश्रम में आकर संन्यास ले लें। पर जितने दिन के लिए वे संन्यास लेंगे इस बीच वे संन्यासी की तरह रहेंगे। फिर लौटकर अपने घर में चुपचाप सम्मिलित हो जाएंगे। ऐसी कुछ व्यवस्था बर्मा में है जहां कोई भी आदमी संन्यास ले सकता है कुछ महीने के लिए। बर्मा में ऐसा आदमी मुश्किल से मिलेगा जिसने जिंदगी में एक-दो बार संन्यास न लिया हो। बर्मा के अनुभव की गहराई बढ़ी है। हर आदमी को संन्यास का रस प्राप्त है। इन तीनों तरह के संन्यास को मैं आजीवन संन्यास नहीं कहता। मैं कहता हूं कि यह अपने निर्णय की बात है। कल किसी को लगता है कि नहीं, हमें वापस लौट आना है, अपनी पुरानी व्यवस्था में, तो हम उसे मना करेंगे नहीं, न उसकी निंदा करेंगे। अपनी मौज से आया था, अपनी मौज से लौट

जाएगा। नहीं तो संन्यास पाखंड हो जाता है। संन्यास में अभी हमारे प्रवेशद्वार हैं, लेकिन निकलने का द्वार नहीं है। एक बार आदमी संन्यासी हो तो हम उसे निकलने नहीं देते। हम इतना अपमान, इतनी निंदा करते हैं, भागे हुए संन्यासी की, निकले हुए की, कि उसकी जिंदगी हम मुश्किल में डाल देते हैं। उसको फिर दो ही रास्ते रह जाते हैं। कल उसे संन्यास आनंदपूर्ण न मालूम पड़े तो फिर वह पाखंडी हो जाता है। ऊपर से वह संन्यासी बना रहता है और पीछे से उसे जो करना है, शुरू कर देता है। इसलिए सारा संन्यास हिपोक्रेसी, पाखंड हो गया। उसमें सब पाखंड चले। वह धन की निंदा करता रहेगा, लेकिन धन इकट्ठा करता रहेगा। वही काम करेगा जिसकी वह निंदा करेगा। तो मेरा मानना यह है कि जिस दिन किसी को लगे कि नहीं भाई, इसमें हमें कुछ रस नहीं आया, तो स्वतंत्रता है तुम्हारी, तुम वापस चले आओ और हम निंदा नहीं करते। इसलिए पाखंडी होने की कोई जरूरत नहीं है। जितने स्वागत से संन्यास देंगे, उतने स्वागत से विदा कर देंगे। और तुम महीने बाद आओगे तो फिर वापस ले लेंगे। इसको हम व्यक्तिगत निर्णय बनाते हैं। हम सामूहिक प्रतिज्ञा नहीं बनाते। यह तुम्हारा संकल्प है। तुमने लिया तुम छोड़ोगे, तुम फिर लेना चाहोगे तो तुम जिम्मेवार हो और किसी के प्रति कोई जिम्मेवारी नहीं। इसमें दो-तीन बातें और नई जोड़ी हैं। पहली बातः मेरी दृष्टि में सदा से है कि संन्यासी किसी धर्म में बंधा हुआ नहीं होना चाहिए। नहीं तो वह संन्यासी ही क्या! तो चाहे वह हिंदू हो, चाहे मुसलमान हो, या जैन, या बौद्ध हो- जैसे ही वह संन्यासी होता है, वह सारी मनुष्यता का हो जाता है। और सब धर्म उसके अपने होते हैं और वह किसी विशेष धर्म का नहीं रह जाता है। फिर भी उसे मौज है कि उसे कुरान पढ़ना पसंद है, उसे मस्जिद में जाकर नमाज पढ़नी है तो पढ़ता रहे। उसे बुद्ध से प्रेम है तो वह जारी रखे। किंतु किसी समुदाय का सदस्य न रहे। यह उसकी व्यक्तिगत आनंद की बात है। स्वाभाविक है कि किसी को कुरान पसंद पड़ती है और किसी को गीता। किंतु गीता पढ़नेवाला संन्यासी अपने को हिंदू नहीं कहेगा। उसे गीता से प्रेम है। कुरान पढ़नेवाला संन्यासी अपने को मुसलमान नहीं कहेगा। तो दुनिया में एक ऐसा संन्यासी चाहिए जो किसी समुदाय का न हो, तब हम दुनिया को ऐसी धार्मिकता दे सकेंगे जो गैर-सांप्रदायिक हो, नहीं तो नहीं दे सकेंगे, यह असंभव होगा देना। दूसरी बातः यह जो संन्यासी इन तीन हिस्सों में बंटे हुए होंगे, ये तीनों हिस्से भी कोई "एयर टाइट कम्पार्टमेंट" नहीं हैं। इसमें से एक दूसरे में यात्रा हो सकती है, जिस आदमी ने पीरियाडिकल संन्यास लिया है, हो सकता है, कल वह कहे कि इसको मैं लंबाना चाहता हूं तो लंबा कर सकता है, जो आदमी हाल में संन्यासी हुआ, कल स्थितियां बदल जाएं और वह कहे कि अब मेरा घर में रहना बिल्कुल अनावश्यक है, कहीं कोई तकलीफ होती नहीं उसमें, तो वह आश्रम में जा सकता है। एक संन्यासी आश्रम में रह रहा है, युवक ही है- कल उस पर कोई जिम्मेवारी नहीं थी, आज उसका किसी से प्रेम हो जाए और विवाह करना चाहे, तो वह गृहस्थ हो सकता है। इनको हम कहीं भी टाइट, बंद नहीं करते हैं, इनके बीच एक प्रवाह होगा। चूंकि हम इसको व्यक्तिगत निर्णय मानते हैं इसलिए समूह को इस संबंध में चिंता की कोई जरूरत नहीं है। तीसरी बातः ये जो सारे संन्यासी हैं, इनके पास इनके विवेक के अतिरिक्त कोई नियम मैं नहीं दूंगा। इनका विवेक जगे इसके लिए ध्यान की प्रक्रिया करें और अपने विवेक से जिएं। ऊपर से थोपे हुए नियम उन पर नहीं होंगे। क्योंकि जब भी हम ऊपर से नियम थोपते हैं व्यक्ति पर तब विवेक जगने में भी बाधा पड़ती है। और व्यक्ति को धोखा देने के कारण बनते हैं। तो हम नहीं कहेंगे कि पांच बजे सुबह उठना अनिवार्य है। हां, हम इतना जरूर कहेंगे कि यदि ध्यान गहरा होता चला जाता है तो नींद का समय कम होता चला जाएगा क्योंकि नींद गहरी हो जाएगी। पर फिर भी हम नहीं कहेंगे कि सब पांच बजे ही उठें, कि सब तीन बजे ही उठें। इस तरह की जोर-जबर्दत्ती हम नहीं थोपेंगे। वरना नियम जो है वह कारागृह बन जाएगा। यह प्रत्येक की मौज एवं विवेक पर निर्भर होना चाहिए। और सच बात भी यह है कि हर आदमी के उठने का वक्त अलग-अलग ही होगा क्योंकि सब आदमियों की नींद की गहराई का वक्त अलग-अलग है। कोई आदमी दो और चार और छह बजे के बीच गहरी नींद लेता है। जिस आदमी ने दो और चार के बीच में गहरी नींद ली तो चार बजे वह उठ जाए तो उसको दिन में

तकलीफ नहीं होगी। और उसको जिसकी नींद चार और छह बजे के बीच में गहरी होती है, वह दिन में परेशान रहेगा। इसलिए प्रत्येक को तय करने की बात है कि विवेक कैसे जगे! यह चिंता की बात होगी। ध्यान कैसे गहरा हो यह चिंता की बात है। बाकी छोटी-छोटी जिंदगी की मर्यादाएं प्रत्येक अपनी सोचेगा। चौथी बातः इसमें कोई गुरु नहीं होगा, क्योंकि जहां गुरु होगा वहां अनिवार्य रूप से संप्रदाय खड़े हो जाते हैं। सब संप्रदाय गुरुओं के आस-पास खड़े होते जाते हैं। बिना गुरु के संप्रदाय खड़ा नहीं हो सकता है। चाहे वे मुहम्मद के पास खड़ा हो, महावीर के पास खड़ा हो और चाहे राम के पास खड़ा हो- जहां भी संप्रदाय खड़ा होगा, वहां एक गुरु होगा। स्वभावतः पूछा जा सकता है कि मैंने दिया है संन्यास तो मैं गुरु नहीं हो जाता। मैंने एक और नई बात जोड़ी है इसमें, वह यह है कि मैं सिर्फ एक साक्षी हूं, तुम्हारे संन्यास का गवाही हूं, पर मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं। इसलिए तुम भी किसी के संन्यास के साक्षी हो, लेकिन गुरु नहीं। कम्यून, आश्रम में अगर सौ संन्यासी रहते हैं और एक नया संन्यासी आता है तो वे सब साक्षी बनेंगे उसके। वह संन्यास लेगा, सौ संन्यासी उसके गवाह होंगे। गवाह से ज्यादा कोई आदमी नहीं होगा। कोई गुरु नहीं होगा, इसलिए मैं संन्यास देनेवाला नहीं हूं, तुमने संन्यास लिया इसका गवाह हूं और किसी व्यक्ति-विशेष पर इसे केंद्रित नहीं करना है। इन तीन वर्गों में बड़े लोग उत्सुक हैं और बड़े पैमाने पर यह संन्यास फैल सकता है। क्योंकि इसमें सबकी सुविधा है और सब तरह के लोगों के लिए व्यवस्था है। मैं तो आशा करता हूं कि दो साल में पूरे देश में हर गांव में संन्यासी को खड़ा कर सकेंगे और यह संन्यासी वहां धर्म के लिए एक केंद्र बन जाएगा और वहां काम करेगा। वह न हिंदू होगा, न मुसलमान, न ईसाई। वह मस्जिद में भी जाएगा, मंदिर में भी जाएगा, मुसलमानों को ध्यान सिखाएगा, हिंदू को भी सिखाएगा। उससे जिसके लिए बन पड़ेगा करेगा, और इसी तरह के छोटे-छोटे आश्रम भी जगह-जगह खड़े करने हैं, जहां ये कम्यून बन जाएं। मेरी दृष्टि से भौतिकवाद से अगर कोई भी लड़ाई लेनी हो तो भौतिकवाद से ज्यादा श्रेष्ठ विकल्प देना होगा, तब लड़ाई होगी। नहीं तो, तो मजा यह है कि लड़ाई तो हम लेना चाहते हैं, लेकिन हमारे पास श्रेष्ठ विकल्प नहीं होता है इसलिए सारी दुनिया को कम्यूनिज्म हड़प ही जाएगा। उससे बचना मुश्किल है। क्योंकि वह गरीब को रोटी देता है, नंगे को कपड़ा देता है, अशिक्षित को शिक्षा देता है। जिसके पास मकान नहीं है, उसको मकान देगा। अध्यात्म के पास देने को कुछ भी नहीं है। वह सिर्फ ईश्वर की बातचीत दे सकता है। उससे लोग ऊब गए हैं। हमें ऐसे कम्यून चाहिए जो आदर्श बन जाएंगे। क्योंकि उस तरह की व्यवस्थाएं और भी फैल जाएंगी। और धीरे-धीरे कोई वजह नहीं कि पूरा गांव कम्यून क्यों न हो जाए, लेकिन उसके आधार आध्यात्मिक होंगे। इससे संन्यास की पूरी धारणा में आमूल फर्क हो जाएगा और क्रांति हो जाएगी।
उस आश्रम में क्या विवाहित पुरुष भी रह सकेगा? क्या वहां आचरण के नियम नहीं होंगे?
हां, उस आश्रम में विवाहित व्यक्ति भी रह सकेगा, क्योंकि मैंने कहा न
कि मैं कोई नियम थोपता नहीं हूं, यह सब व्यक्ति के ऊपर निर्भर है। हम उससे कहनेवाले भी नहीं कि तुम यह क्या कर रहे हो? यह सब उसकी चेतना पर ही निर्भर है, बस यह सब उसी का निर्णय है। क्योंकि मैं यह मानता हूं कि अगर तुम डगमगाते हो तो तुम गिरोगे। इससे दूसरे को चिंता क्यों? तुम गलती करते हो तो तुम दुःख भोगोगे। इसके लिए मैं और दूसरे क्यों चिंतित हों? हम कितनी मुसीबत उठा रहे हैं इन सबके पीछे कि कोई डगमगा न जाए। इसके लिए दूसरे परेशान हैं। वह डगमगाएगा तो अपने डगमगाने का जो दुःख है वह झेलेगा, इसमें किसी को परेशान होने की आवश्यकता नहीं। वह नहीं डगमगाता तो हम उसको आदर देनेवाले नहीं। मेरी दृष्टि में यह है कि व्यक्ति के ऊपर जो समाज की बहुत ज्यादा आंख रहती है उसको हटाना है। यह एकदम गलत है, किसी को हक नहीं है कि किसी पर इतने जोर से आंख गड़ाए, नहीं तो व्यक्ति की हत्या होगी। तुम्हारे पान और सिगरेट से भी सारा समाज चिंतित है। इससे कोई लेना-देना नहीं होना चाहिए किसी का। यदि तुम सिगरेट पीते हो तो इससे उम्र कम होगी तो तुम्हारी होगी। इसमें दूसरों को क्यों चिंता है! मैं मानता हूं समाज को उस समय तक

बीच में नहीं आना चाहिए, जब तक कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे को नुकसान न पहुंचाने लगा हो। हमारे आश्रम में सिर्फ इतनी फिक्र होगी कि तुम अपने को अगर नुकसान पहुंचाते हो तो पहुंचा सकते हो, लेकिन दूसरे को तुम्हें नुकसान पहुंचाने का कोई हक नहीं। यानी तुम सिगरेट पीते हो तो हमें कोई फिक्र नहीं, उसका तुम्हें दुःख मिलनेवाला है। तुम फ्रस्ट्रेट, पीड़ित होनेवाले हो लेकिन तुम दूसरे के मुंह में सिगरेट लगाने जाओ तो गलती शुरू होती है, उसके पहले कोई गलती नहीं है। और मेरा मानना यह है कि जैसे ध्यान गहरा होता है तो जो हमारी नासमझियां हैं, वह अपने से गिरनी चाहिए। अगर उसको गिराना पड़े तो इसका मतलब यह है कि ध्यान में गहराई नहीं बढ़ रही है। अब एक आदमी ध्यान करते हुए सिगरेट नहीं पी सकता क्योंकि सिगरेट पीने के लिए चित्त की बेचैनी जरूरी है। असल में बेचैन चित्त ही पीता है और बेचैन चित्त धुएं को बाहर-भीतर कर अपनी बेचैनी को निकालने का उपाय खोज लेता है। इसलिए मैं नहीं कहता हूं कि शांत आदमी सिगरेट नहीं पिएगा। मैं कहता हूं कि वह पी नहीं सकता, उसके पीने की बात ही असंभव है और अगर पी रहा है तो हमें मानना चाहिए कि वह शांत नहीं है। उसको शांत होने की दिशा देनी चाहिए बजाय इसके कि हम उसकी सिगरेट छीनें। एक विधायक दृष्टि वहां होगी कि अगर एक आदमी सिगरेट पीता है तो हम समझेंगे कि वह आदमी ध्यान में गहरा नहीं जा रहा है। नहीं तो यह बेचैनी खत्म हो जाती थी। अगर एक संन्यासी सिनेमा देखने जाता है तो मतलब यह है कि चित्त अपने को भुलाने में लगा है, उसके ध्यान की गहराई नहीं बढ़ रही है। हमें ध्यान की फिक्र जरूर करनी है। उसके लिए ध्यान को बढ़ाने की कम्यून, आश्रम फिक्र करे। लेकिन हम उसके आचरण की फिक्र नही करेंगे, पर हां इसको हम लक्षण मानेंगे। जब ध्यान की गहराई बढ़ जाएगी तो ये लक्षण गिर जाएंगे। अगर एक आदमी मांस खा रहा है और मांसाहारी है तो उसका कुल मतलब इतना है कि अभी उसके ध्यान में वैसी निर्मलता नहीं आयी है कि इतनी भी पीड़ा देना किसी को कष्टपूर्ण हो जाए। इसलिए हम न कहेंगे कि तुम मांस मत खाओ, क्योंकि यह हो सकता है कि वह मांस खाना बंद कर दे लेकिन उसका चित्त न बदले। क्योंकि जो नहीं खा रहे हैं वे कोमल व निर्मल हो गए हैं, ऐसा नहीं दिखाई पड़ता। किंतु कई बार ऐसा दिखाई पड़ता है कि मांसाहारी से गैर-मांसाहारी अधिक कठोर है, क्योंकि मांसाहारी का मांस वगैरह खाने में बहुत-सा क्रोध और बहुत-सा दुःख देने का भाव निकल जाता है और उनका नहीं निकल पाता। अक्सर ऐसा होता है कि शिकारी अच्छे आदमी होते हैं। अगर शिकारी के साथ रहने का मौका मिले तो आपको पता चले कि इतना बढ़िया आदमी, इतना मिलनसार आदमी मिलना मुश्किल है। और इसका कुल इतना कारण होता है कि उसकी हिंसा तो जंगल में निकल गई होती है, चित्त वहां खाली हो गया होता है। इसलिए जिनको हम आमतौर पर साधु कहते हैं वे बढ़िया आदमी नहीं होते। उनका कुछ भी नहीं निकल पाता, सब भरा रहता है। वे तरकीब से निकालते रहते हैं। इसलिए मेरा किसी बाहरी परिवर्तन पर जोर नहीं है, जोर भीतरी परिवर्तन पर है। बहुत साधारण और ऊपरी जोर है कि नाम बदल डालो तो तुम्हारा पुराना व्यक्तित्व बदल जाएगा, तुम्हें खुद ही रोज-रोज यह ख्याल रहने लगेगा कि तुम अब वह नहीं हो जो कल तक थे। और कपड़े बदल डालो ताकि तुम्हें स्मरण रहे पूरे समय। यह प्राथमिक रूप से सही होगा, बाद में कोई मूल्य नहीं। तुम्हें स्मरण रहने लगे कि तुमने जिंदगी में एक क्रांति का निर्णय किया है और वह क्रांति तुम्हें पूरी करनी है। बाकी ऊपर से कुछ और नहीं थोपना है। अभी बीस लोगों ने संन्यास का निर्णय किया है मनाली में, उनके लिए कम्यून, आश्रम बनाना है- एक आश्रम बनाया है आजोल में।
भगवानश्री, व्यक्तिगत या सामाजिक स्तर पर इसके क्या परिणाम होंगे?
बहुत परिणाम होंगे। व्यक्तिगत स्तर पर परिणाम शुरू होंगे ही और धीरे-धीरे सामाजिक स्तर पर भी अशांति विदा होगी, चिंता विदा होगी, वह जो चित्त का पागलपन है वह विदा होगा। तुम हलके हो जाओगे और जीवन में परमात्मा का प्रवेश होना शुरू हो जाएगा। और तुम इस जगत में सिर्फ खाने-पीने, कपड़े पहनने, मकान बनाने को ही बड़ा काम नहीं समझोगे, बल्कि आत्मा के विकास की भी संभावना बना पाओगे। और जो चीजें तुम्हें कल तक बहुत महत्वपूर्ण थीं वे एकदम गैर-महत्वपूर्ण हो जाएंगी और जो कल तक तुमने सोचा ही नहीं था वह बहुत

महत्वपूर्ण हो जाएगा। व्यक्तिगत जीवन में तो आमूल क्रांति हो जाएगी। वह हल्का-फुल्का हो जाएगा कि वह उड़ सके। उसका भारीपन विदा हो जाएगा, उसकी गंभीरता और उदासी चली जाएगी। उसका मानसिक रोग असंभव हो जाएगा। और ध्यान में जैसे-जैसे गहराई बढ़ती जाएगी वैसे-वैसे वह आनंद से भरता जाएगा। जितनी गहराई बढ़ेगी उतना सत्य का अनुभव होने लगेगा। समाज पर भी व्यापक परिणाम होंगे। लेकिन वे बाद में होंगे, क्योंकि समाज व्यक्तियों के जोड़ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जो भी आज हमें समाज दिखाई पड़ रहा है, वह हमारा ही योगदान, कंट्रीब्यूशन है। हम जैसे हैं, वैसा हमारा समाज है। अगर इसमें एक भी व्यक्ति बदल जाए तो उसके आसपास बदलाहट का क्रम शुरू हो जाएगा। यदि पति बदलेगा तो उसकी पत्नी वही नहीं रह सकती जो थी, उसको भी बदलना ही पड़ेगा। बच्चे वही नहीं रह सकते जो कल तक थे, अगर बाप बदलेगा तो। अगर शिक्षक बदलेगा तो विद्यार्थी वही नहीं रह सकते जो उसके पास पहले थे। उनमें बदलाहट अनिवार्य हो जाएगी। एक व्यक्ति एक ही व्यक्ति नहीं क्योंकि उसके अनेक संबंध हैं। वह अनेक जगह जुड़ा है, उसकी जहां बदलाहट हुई, वह सब जगह जहां-जहां जुड़ा है, वहां-वहां बदलाहट होगी। अगर हम थोड़े-से व्यक्तियों को एक गांव में बदलने को तैयार हो जाएं तो पूरे गांव को प्रभावित करेंगे। वह बदलाहट होने ही वाली है। अभी जिन लोगों ने संन्यास लिया, उनमें एक लड़की भी है और एक दफ्तर में क्लर्क है। और उस दफ्तर में भारी हंगामा मच गया, संन्यासी होकर वह पहुंच गई आफिस। वह लड़की टायपिस्ट है। किसी ने अच्छा कहा और किसी ने बुरा कहा। किसी ने मजाक उड़ाई और वह चर्चा का केंद्र हो गई। उसको मैंने कहा था कि वह सब होगा और उसे देखना है कि यह सब हो रहा है, एक नाटक हो रहा है। वह देखती रही एक दिन, दो दिन, तीसरे दिन-! फिर लोगों ने उससे पूछना शुरू किया कि तुम बदल गई हो- बिल्कुल बदल गई हो! तुम पर हमारी बात का कोई असर नहीं है। उसके मैनेजर ने उसे बुलाया और कहा कि इतनी शीघ्रता से इतनी बदलाहट कैसे हुई! क्योंकि उसे सदा ही गंभीर और परेशान देखा था----और इतने उपद्रव में भी तुम प्रसन्न हो और हंस रही हो!- उसने मुझसे कहा था कि कपड़े बदलने से क्या होगा? बिना कपड़े के मैं मन से ही बदलने की कोशिश करूं! तीन दिन बाद उसने आकर मुझसे कहा कि बिना कपड़े बदले घटना नहीं घटती। संन्यासी सड़क पर निकले तो, घर में जाए तो, दफ्तर में जाए तो चौबीस घंटे उसको शांत रहना ही पड़ता। कोई-न-कोई सड़क पर हंसेगा, कोई इशारा करेगा कि क्या मामला है। दफ्तर में तो और भी दिक्कत होगी, दफ्तर में लोग भी आएंगे, काम भी करना पड़ेगा। मैनेजर आज्ञा भी देगा। उन सब चुनौतियों से कोई फर्क नहीं पड़ा उसके संन्यास के निश्चय में। उसके दफ्तर से दो लोग और आए, अभी कोई पंद्रह दिन बाद ही उन्होंने कहा कि हम भी उसमें शामिल होने की हिम्मत कर रहे हैं। समाज में धीरे-धीरे अंतर आते हैं। व्यक्ति हम बदलें तो उसके आस-पास फर्क पड़ना शुरू होगा। एक बार तुम्हें ख्याल भी आ जाए तो वह तुम्हारे विचार की बात है। हमारी पूरी जिंदगी हमारा ख्याल है। एक आदमी है, उसे तुम कह दो कि लाख रुपए की लाटरी मिल गई है। फिर देखो उस आदमी की चाल बदल जाएगी, कुछ मिल नहीं गया उसको लाख रुपया, फिर भी इसकी चाल बदल गई। इसका ढंग बदल गया, उसके आंख की रौनक बदल गई। उसका सब बदल गया, क्योंकि उसके दिल में लाख रुपए की लाटरी का ख्याल आ गया। यह जो तुम्हें ख्याल आ गया कि तुम संन्यासी हो गए, इससे तुम्हारा सब बदल जाएगा। तुम कल्पना नहीं कर सकते कि क्या-क्या बदल जाएगा। वह ख्याल इतना अद्भुत है कि एक बार तुम्हें ख्याल में आ गया कि तुम संन्यासी हो गए हो तो तुम्हारा बोलना बदल जाएगा, तुम्हारा देखना बदल जाएगा। तुम कल जैसे देखते थे वैसे नहीं देख सकोगे। क्योंकि तुम संन्यासी हो। हमें दिखाई नहीं पड़ता ऊपर से। वह घटना जब घटती है तभी ख्याल में आएगा। कल तुम जिस आदमी पर नाराज होते थे, आज नहीं हो सकोगे। एक आदमी जब मंत्री होता है तब देखो! मंत्री होता है तो क्या है? और जब मंत्री नहीं रहेगा तब तुम उसको देखो! आदमी वही है, लेकिन उसका सब चेहरा गया, वह रौनक गई, जो उसके मंत्री होने में थी। वह सब उसके मन में थी। वह सब उसके मन में एक ख्याल से निर्मित होता है। न्यूक्लिअस, केंद्र जो है हमारे व्यक्तित्व का वह हमारा विचार है। जो विचार हमारे भीतर होता है, उसके आसपास ही हमारा व्यक्तित्व निर्मित होता है। जब तुम्हें ख्याल होता

है कि तुम सफल हो रहे हो तो बात और होती है, जब तुम्हें ख्याल होता है कि तुम असफल हो रहे हो तब तुम्हारी हालत और हो जाती है। संन्यास तो एक बहुत अद्भुत घटना है। वह ख्याल बैठ गया एक बार मन में गहरे और बैठेगा तब ही तुम बदलोगे। नहीं तो तुम कपड़े भी बदलने को कैसे राजी हो सकते हो। उसकी तुम हिम्मत नहीं जुटा सकते। तुमने हिम्मत जुटाई इसका मतलब है कि तुम्हारे भीतर संन्यास का ख्याल गहराई में आ गया है। और जब ख्याल आया तो तुम्हें बदल डालेगा। और महीनेभर में पाओगे कि तुम्हारे भीतर सारा व्यक्तित्व ही बदल गया। तुम दूसरे ही आदमी हो गए!
भगवानश्री, कपड़े का रंग क्या चुना है?
भगवा रंग ही चुना, गैरिक रंग ही चुना है। और उसका नमूना एक-सा ही रखा है- स्त्री-पुरुष का, ताकि स्त्री-पुरुष का फासला भी कम हो- एक कमीज लंबी और नीचे लुंगी। नमूना दोनों के लिए एक-सा रखा है। गैरिक रंग को चुना है। ऊपर से यदि सर्दी है तो गरम कपड़ा डाल सकते हो। इससे कोई दिक्कत नहीं। आश्रम में आर्थिक व्यवस्था कैसी होगी?
सिर्फ तुम्हारे खाने का ही खर्च रहेगा, आश्रम में और कोई खर्च नहीं होगा जो अभी सावधिक, पीरियाडिकल संन्यासी होगा उसे अपने लिए खर्च की व्यवस्था करनी पड़ेगी। जो वहां स्थायी रूप से रहेगा उसकी तो व्यवस्था आश्रम में ही होगी। सारे लोग मिलकर उसकी व्यवस्था करेंगे। जो माहभर के लिए जाएगा, उसको अपनी व्यवस्था करनी होगी क्योंकि माहभर तो वह साधना ही करेगा। उसे किसी उत्पादक काम में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। एक माह में कुछ भी नहीं हो सकता उससे, तो वह अपनी व्यवस्था करेगा। हमारे पास बगीचे, खेत इत्यादि हो जाएंगे, तो यह भी माहभर काम कर सकेगा।
मैं यदि अपने कपड़े न बदलूं तो संन्यास का भाव मात्र क्या काफी न होगा?
तो मैं मना नहीं करता। तुम अभी भी कपड़े पहने हो तो मैं क्या कह सकता हूं! तुम कुछ भी पहन सकते हो। लेकिन उससे कुछ भी लाभ न होगा। यह तुम्हें ख्याल नहीं है। जैसे स्त्रियों ने मुझसे कहा कि आप हमें भगवा रंग की साड़ी पहनने को कह दें। लेकिन साड़ी पहनने में कोई दिक्कत नहीं है क्योंकि साड़ी पहनी जाती है, इसमें कोई याद दिलानेवाला नहीं है। जैसे अभी पेंट पहन रहे हैं, पेंट के बदले भले ही लुंगी पहन लें। लेकिन लुंगी कोई कठिन मामला नहीं है। सारा दक्षिण लुंगी पहन रहा है। तुम्हारे संन्यासी होने का ख्याल यदि तुम्हें न आए, तुम्हें दूसरे याद न दिलाएं तब तक उसका कोई मूल्य नहीं। तो फिर तुम यही पहने रहो, कोई फर्क नहीं। जोर के कारण और हैं। मैं कह रहा हूं कि कपड़े पहनने से जब तुम्हारे चारों तरफ का वातावरण "मोल्ड" हो जाएगा, तो तुम फर्क देख सकोगे। तुम साधारणतः सफेद लुंगी लगा लो, ठीक। लेकिन गेरुआ कपड़ा पहनकर तुम निकल न सकोगे एक जगह से जहां तुम बिना पूछे रह जाओ। उससे संन्यासी की धारणा पैदा होती है। और युनिफार्मिटी, एक-सा रंग चाहता हूं इसलिए कि तुम्हारा कम्यून बनाना है। अब समझें---- आजोल में आश्रम बनाया गया। दो सौ लोग एक ढंग के कपड़े पहनेंगे, उससे एक तरह का वातावरण निर्मित होगा। यदि दो सौ लोग एक-से दिखें तो एक तरह का वातावरण होगा और जब नया आदमी आएगा तथा इन दो सौ आदमियों को एक कपड़े में पाएगा तो उसे एक हवा का रुख उसमें दिखाई देगा। यह प्रश्न कि क्या दूसरे ढंग के कपड़े हो सकते हैं, इसका मनोवैज्ञानिक कारण है। जो सवाल उठता है न कि "ऐसा भी कर लें", वह डर के कारण है, वह भी डर की वजह से ही है!

नव-संन्यास क्या?
चौथा प्रवचन

संन्यास के फूलः संसार की भूमि में

भगवानश्री, आपने कहा है कि बाहर से व्यक्तित्व व चेहरे आरोपित कर लेने में सूक्ष्म चोरी है तथा इससे पाखंड और अधर्म का जन्म होता है। लेकिन देखा जा रहा है कि आजकल आपके आसपास अनेक नए-नए संन्यासी इकट्ठे हो रहे हैं और बिना किसी विशेष तैयारी और परिपक्वता के आप उनके संन्यास को मान्यता दे रहे हैं। क्या इससे आप धर्म को भारी हानि नहीं पहुंचा रहे हैं? कृपया इसे समझाएं!
पहली बात, अगर कोई व्यक्ति मेरे-जैसा होने की कोशिश करे तो मैं उसे रोकूंगा। उसे मैं कहूंगा, कि मेरे-जैसा होने की कोशिश आत्मघात है। लेकिन अगर कोई व्यक्ति स्वयं जैसे होने की कोशिश की यात्रा पर निकले तो मेरी शुभकामनाएं उसे देने में मुझे कोई हर्ज नहीं है। जो संन्यासी चाहते हैं कि मैं परमात्मा के मार्ग पर उनकी यात्रा का गवाह बन जाऊं, विटनेस बन जाऊं तो उनका गवाह बनने में मुझे कोई एतराज नहीं है, लेकिन मैं गुरु किसी का भी नहीं हूं। मेरा कोई शिष्य नहीं है, मैं सिर्फ गवाह हूं। अगर कोई मेरे सामने संकल्प लेना चाहता है कि मैं संन्यास की यात्रा पर जा रहा हूं तो मुझे गवाह बन जाने में कोई एतराज नहीं है, लेकिन अगर कोई मेरा शिष्य बनने आए तो मुझे भारी एतराज है। मैं किसी को शिष्य नहीं बना सकता हूं। क्योंकि मैं कोई गुरु नहीं हूं। अगर कोई मेरे पीछे चलने आए तो मैं उसे इनकार करूंगा, लेकिन कोई अगर अपनी यात्रा पर जाता हो और मुझसे शुभकामनाएं लेने आए तो शुभकामनाएं देने की भी कंजूसी करूं, ऐसा संभव नहीं है। फिर भी --... यह आपको दिखाई पड़ गया है- मैं गैरिक वस्त्र नहीं पहनता हूं, मैंने कोई गले में माला नहीं डाली हुई है। फिर उनके द्वारा मेरी नकल का कोई कारण नहीं है! फिर भी पूछते हैं आप कि किसी को भी बिना उसकी पात्रता का ख्याल किए मैं उसके संन्यास को स्वीकार कर लेता हूं। जब परमात्मा ही हम सबको हमारी बिना किसी पात्रता के स्वीकार किए है तो मैं अस्वीकार करनेवाला कौन हो सकता हूं! हम सबकी पात्रता क्या है जीवन में! और संन्यास के लिए एक ही पात्रता है कि आदमी अपनी अपात्रता को पूरी विनम्रता से स्वीकार करता है। इसके अतिरिक्त कोई पात्रता नहीं है। अगर कोई आदमी कहता है कि मैं पात्र हूं, मुझे संन्यास दें तो मैं हाथ जोड़ लूंगा, क्योंकि जो पात्र है उसको संन्यास की जरूरत ही नहीं। और जिसे यह ख्याल है कि मैं पात्र हूं वह संन्यासी नहीं हो पाएगा, क्योंकि संन्यास विनम्रता, ह्यूमिलिटी का फूल है। वह विनम्रता में ही खिलता है। जो आदमी पात्रता के सर्टिफिकेट लेकर परमात्मा के पास जाएगा, शायद उसके लिए दरवाजे नहीं खुलेंगे। लेकिन जो दरवाजे पर अपने आंसू लेकर खड़ा हो जाएगा और कहेगा मैं अपात्र हूं, मेरी कोई भी पात्रता नहीं है कि मैं द्वार खुलवाने के लिए कहूं; लेकिन फिर भी प्रयास है, आकांक्षा है; फिर भी लगन है, भूख है; फिर भी दर्शन की अभीप्सा है- दरवाजे उसके लिए खुलते हैं। तो मेरे पास कोई आकर अगर संन्यास के लिए कहता है तो मैं कभी पात्रता नहीं पूछता। क्योंकि कोई संन्यासी होना ही चाहता है, इतनी इच्छा क्या काफी नहीं है? जो संन्यासी होना चाहता है, क्या उसकी प्यास, उसकी प्रार्थना- इतना ही काफी नहीं है? क्या इतनी लगन, अपने को दांव पर लगाने की इतनी हिम्मत काफी नहीं है? और पात्रता क्या होगी? प्यास के अतिरिक्त और प्रार्थना के अतिरिक्त आदमी कर क्या सकता है? अपने को छोड़ने के अतिरिक्त, समर्पण, सरेंडर के अतिरिक्त आदमी कर क्या सकता है? लेकिन, समर्पण के लिए भी कोई पात्रता चाहिए होती है? पात्र समर्पण नहीं कर पाएंगे, क्योंकि वे समझते हैं कि वे अधिकारी हैं। लेकिन जिसे अपनी अपात्रता का पूरा बोध है, वह समर्पण कर पाता है। परमात्मा के द्वार पर जो असहाय है, अपात्र है, दीन है, अयोग्य है लेकिन फिर भी "उसकी" प्रार्थना से भरा है- उसके लिए द्वार सदा ही खुला है। लेकिन जो पात्र हैं, सर्टिफाइड हैं, योग्य हैं, काशी से उपाधि ले आए हैं, शास्त्रों के ज्ञाता हैं, तपश्चर्या के धनी हैं, उपवासों

की फेहरिश्त जिनके पास है कि उन्होंने इतने उपवास किए हैं, ऐसे व्यक्ति अपने अहंकार को ही भर लेते हैं। और अहंकार से बड़ी अपात्रता कुछ भी नहीं है। अपने को पात्र समझनेवाले सभी लोग अहंकार से भर जाते हैं। सिर्फ अपने को अपात्र समझनेवाले लोग ही निरहंकार की यात्रा पर निकल पाते हैं। इसलिए मैं उनसे उनकी पात्रता नहीं पूछ सकता हूं। फिर मैं उनका गुरु नहीं हूं जो मैं उनसे उनकी पात्रता पूछूं। वे मेरे पास सिर्फ इसलिए आए हैं कि मैं उनका गवाह बन जाऊं। इस संबंध में दो-तीन बातें और कहूं तो कल इस बाबत और भी आपसे बात करूंगा तो साफ हो सकेगी बात! संन्यास मेरे लिए व्यक्ति और परमात्मा के बीच सीधे संबंध का नाम है। उसमें कोई बीच में गुरु नहीं हो सकता। संन्यास व्यक्ति का सीधा समर्पण है। उसमें बीच में किसी के मध्यत्थ होने की कोई भी जरूरत नहीं है और परमात्मा चारों तरफ मौजूद है। और एक आदमी उसके लिए समर्पित होना चाहे तो समर्पित हो सकता है। और फिर अपात्र समर्पण से पात्र बनना शुरू हो जाता है। और फिर अपात्र संकल्प, समर्पण, प्रार्थना से पात्र बनना शुरू हो जाता है। संन्यासी सिद्ध नहीं है, संन्यासी तो सिर्फ संकल्प का नाम है कि वह सिद्ध होने की यात्रा पर निकला है। संन्यासी तो सिर्फ यात्रा का प्रारंभ बिंदु है, अंत नहीं है। वह तो सिर्फ शुभारंभ है, वह मील का पहला पत्थर है, मंजिल नहीं है। लेकिन मील के पहले पत्थर पर खड़े आदमी से पूछें जिसने अभी पहला कदम भी नहीं उठाया है, उससे पूछें कि मंजिल पर पहुंच गए हो तो ही चल सकते हो, तो जो मंजिल पर पहुंच गया है वह चलेगा क्यों? और जो नहीं पहुंचा है वह कहां से दिखाए कि मैं मंजिल पर पहुंच गया हूं? पहला कदम तो अपात्रता में ही उठेगा, लेकिन पहला कदम भी कोई उठाता है, यह भी बड़ी पात्रता है। और पहले कदम की ही कोई हिम्मत जुटाता है तो यह भी बड़ा संकल्प है। संन्यास मेरी दृष्टि में बहुत और तरह की बात है। संन्यास मेरी दृष्टि में सिर्फ इस बात का स्मरण है कि मैं अब स्वयं को परमात्मा के लिए समर्पित करता हूं। अब मैं स्वयं को सत्य की खोज के लिए समर्पित करता हूं। अब मैं साहस करता हूं कि धार्मिक चित्त की तरह जीने की चेष्टा करूंगा। ये संन्यासी गैरिक वस्त्रों में आपको दिखाई पड़ रहे हैं। वह उनके स्मरण के लिए हैं, "रिमेंबरिंग" के लिए है कि उनको स्मरण बना रहे कि अब वे वही नहीं हैं जो कल तक थे। दूसरे भी उन्हें स्मरण दिलाते रहें कि अब वे वही नहीं हैं जो कल तक थे। वस्त्रों की बदलाहट से कोई संन्यासी नहीं होता, लेकिन संन्यासी अपने वस्त्र बदल सकता है। गले में माला डाल लेने से कोई संन्यासी नहीं होता, लेकिन संन्यासी गले में माला डाल सकता है और माला का उपयोग कर सकता है। गले में डली माला उसके जीवन में आए रूपांतरण की निरंतर सूचना है। आप बाजार जाते हैं, कोई चीज लानी होती है तो कपड़े में गांठ बांध लेते हैं। जब भी गांठ याद पड़ती है, ख्याल आ जाता है कि कोई चीज लाने को आया था। गांठ चीज नहीं है और जिसने गांठ बांध ली वह चीज ले ही आएगा यह भी पक्का नहीं है। क्योंकि जो चीज भूल सकता है वह गांठ भी भूल सकता है। लेकिन फिर भी जो चीज भूल सकता है, वह गांठ बांध लेता है और सौ में नब्बे मौकों पर गांठ की वजह से चीज ले आता है। यह कपड़ा, माला- यह सारा बाहरी परिवर्तन संन्यास नहीं है। यह सिर्फ गांठ बांधना है कि मैं एक संन्यास की यात्रा पर निकला हूं। उसका स्मरण, उसका सतत स्मरण मेरी चेतना में बना रहे, वह स्मरण सहयोगी है।
भगवानश्री, आप कहते हैं कि पंच महाव्रत- अहिंसा अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम और अप्रमाद की साधना फलीभूत हो सके तो व्यक्ति व समाज का सर्वांगीण विकास होगा। इसमें आपके द्वारा प्रस्तावित नई संन्यास-दृष्टि का क्या अनुदान हो सकता है? कृपया इसे सविस्तार स्पष्ट करें।
अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम और अप्रमाद संन्यास की कला के आधारभूत सूत्र हैं। और संन्यास एक कला है। समस्त जीवन ही एक कला है। और केवल वे ही लोग संन्यास को उपलब्ध हो पाते हैं जो जीवन की कला में पारंगत हैं। संन्यास जीवन के पार जानेवाली कला है। जो जीवन को उसकी पूर्णता में अनुभव कर पाते हैं, वे अनायास ही संन्यास में प्रवेश कर जाते हैं- करना ही होगा। वह जमीन का ही अगला कदम है। परमात्मा संसार की सीढ़ी पर चढ़कर पहुंचा गया मंदिर है। तो पहली बात तो आपको यह स्पष्ट कर दूं कि संसार और संन्यास

में कोई भी विरोध नहीं है। वे एक ही यात्रा के दो पड़ाव हैं। संसार में ही संन्यास विकसित होता है और खिलता है। संन्यास संसार की शत्रुता नहीं है, बल्कि संन्यास संसार का प्रगाढ़ अनुभव है। जितना ही जो संसार को अनुभव कर पाएगा, वह पाएगा उसके पैर संन्यास की ओर बढ़ने शुरू हो गए हैं। जो जीवन को ही नहीं समझ पाते, जो संसार के अनुभव में ही गहरे नहीं उतर पाते वे ही केवल संन्यास से दूर रह जाते हैं। इसलिए पहली बात तो आपको स्पष्ट कर दूं! मेरी दृष्टि में संन्यास का फूल संसार के बीच में ही खिलता है। उसकी संसार से शत्रुता नहीं, संसार का अतिक्रमण है संन्यास। उसके भी पार चले जाना है। सुख को खोजते-खोजते जब व्यक्ति पाता है कि सुख मिलता नहीं वरन जितना सुख को खोजता है उतने ही दुःख में गिर जाता है; शांति को चाहते-चाहते जब व्यक्ति पाता है, कि शांति मिलती नहीं वरन शांति की चाह और भी गहरी अशांति को जन्म दे जाती है; धन को खोजते-खोजते पाता है कि निर्धनता भीतर की और घनीभूत हो जाती है, तब जीवन में संसार के पार आंख उठनी शुरू होती है। वह जो संसार के पार आंखों का उठना है उसका नाम संन्यास है। इसलिए यह जो पांच सूत्र जिनकी हम यहां चर्चा कर रहे हैं, ठीक से समझें तो संन्यास के ही सूत्र हैं। और जिसकी आंखें संसार के पार उठनी शुरू नहीं हुईं उसके किसी भी काम के नहीं हैं। मुझे बहुत से मित्रों ने आकर कहा कि बात कुछ गहरी है और हमारे सिर के ऊपर से निकल जाती है। तो मैंने उनसे कहा कि अपने सिर को ऊंचा करो ताकि सिर के ऊपर से निकल न जाए। जिनकी आंखें संसार के जरा भी ऊपर उठती हैं उनके सिर ऊंचे हो जाते हैं और तब ये बातें सिर के ऊपर से नहीं निकलेंगी, हृदय के गहरे में प्रवेश कर जाएंगी। ये बातें गहरी कम, ऊंची ज्यादा हैं। असल में ऊंचाई ही गहराई बन जाती है। और ऊंची अपने आप में नहीं हैं। हम बहुत नीचे संसार में गड़े हुए खड़े हैं इसलिए ऊंची मालूम पड़ती हैं। ऊंचाई सापेक्ष है, रिलेटिव है। और एक बात ध्यान रहे कि संसार से थोड़ा ऊपर न उठें, संसार से थोड़ा ऊपर न देखें- रहें संसार में, हर्जा नहीं! जमीन पर खड़े होकर भी आकाश के तारे देखे जा सकते हैं। खड़े रहें संसार में, लेकिन आंखें थोड़ी ऊपर उठ जाएं तो ये सारी बातें बड़ी सरल दिखाई पड़नी शुरू होती हैं। वरन यही बातें तब सरल मालूम पड़ती हैं। संसार की बातें रोज कठिन होती चली जाती हैं। कठिन होंगी ही, क्योंकि जिनका अंतिम फल सिवाय दुःख के और जिनकी अंतिम परिणति सिवाय अज्ञान के और जिनका अंतिम निहृकर्ष सिवाय गहन अंधकार के कुछ भी न हो पाता हो वे बातें सरल नहीं हो सकतीं, वे जटिल हैं बहुत। दिखाई चीज कुछ पड़ती है, है कुछ और, भ्रम कुछ पैदा होता है, सत्य कुछ और है। लेकिन हम संसार में इस भांति खोए होते हैं कि और कोई सत्य हो सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं उठती। मैंने सुना है कि एक फ्रेंच उपन्यासकार बालजाक के पास कोई व्यक्ति मिलने गया था। तो वह बालजाक से उसके उपन्यास के पात्रों के संबंध में बात कर रहा था। फिर बात उपन्यास के पात्रों पर चलते- चलते धीरे-धीरे राजनीतिक नेताओं पर और देश की राजनीति पर चली गई। थोड़ी देर बालजाक बात करता रहा और फिर उसने कहा, माफ करिए- "लैट अस कम बैक टु द रियलिटी अगेन, अब हमें असली बातों पर फिर वापस लौट आना चाहिए"! और बालजाक ने अपने उपन्यास के पात्रों की बात फिर से शुरू कर दी। बालजाक के लिए उसके उपन्यास के पात्र रियलिटी है, यथार्थ है; और जिंदगी के मंच पर सच में जो पात्र खड़े हैं वे अयथार्थ हैं। बालजाक ने कहा, छोड़ो अयथार्थ बातों को, हमें अपनी यथार्थ बातों पर फिर से वापस लौट आना चाहिए। बालजाक उपन्यासकार है। उसके लिए उपन्यास के पात्र सत्य मालूम होते हैं, जीवंत व्यक्तियों से भी ज्यादा। हम जिस संसार में इतने डूबे खड़े हैं, वहां हमें संसार के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य दिखाई नहीं पड़ता है। यद्यपि जिन्होंने भी आंखें ऊपर उठाकर देखा है, उनके ऊपर आंख उठाते ही संसार एक अयथार्थ हो जाता है, एक अनरियलिटी हो जाता है। संन्यास का अर्थ है संसार के ऊपर आंख उठाना। संसार ही सब कुछ नहीं है, उसके पार भी कुछ है। उसकी तरफ खोज में गई आंखों का नाम संन्यास है।

यह नव-संन्यास क्या है?

--... कुछ बातें आपको कहूं तो स्पष्ट हो सके। ऐसा संन्यास करीब-करीब पृथ्वी से विदा होने के करीब है, क्योंकि अब तक संन्यासी संसार से टूटकर जिया है। और अब भविष्य में ऐसे संन्यास की कोई भी संभावना बाकी नहीं रह जाएगी जो संसार से टूटकर जी सके। इसलिए रूस से संन्यासी विदा हो गया, चीन से संन्यासी विदा किया जा रहा है। आधी दुनिया संन्यासी से खाली हो गई है। शेष दुनिया कितने दिन तक संन्यासी के साथ रहेगी, कहना मुश्किल है। इस पूरी पृथ्वी पर यह हमारी सदी शायद संन्यासी की अंतिम सदी होगी यदि संन्यास को नए अर्थ और नए डायमेंशन, नए आयाम न दिए जा सकें। यह संन्यास विदा क्यों हो रहा है? संसार से तोड़कर जिस चीज को हमने अब तक बचा रखा था वह "हाट हाउस प्लांट" था, वह संसार के धक्कों को अब नहीं सह पा रहा है। और जिस समाज ने संन्यासी को संसार से तोड़कर जिंदा रखा था वह समाज भी मिटने के करीब आ गया है। तो अब उस समाज के द्वारा निर्मित संन्यास की व्यवस्था और संस्था भी बच नहीं सकती। जब समाज ही पूरा रूपांतरित होता है, तो उसकी सारी विधाएं और उसके सारे आयाम टूट जाते हैं। जिस समाज में राजा था, महाराजा थे, वह समाज मिट गया, राजा-महाराजा मिट गए। राजा-महाराजा के साथ उस समाज के दरबार में पला हुआ कवि मिट गया। जो समाज कल तक था, जिसने संन्यासी को पाला था वह समाज विदा हो रहा है, वह समाज बचनेवाला नहीं है। संन्यासी भी बच नहीं सकेगा, यदि संन्यासी भी नए रूप स्वीकार न कर सके। तो एक बात जो मेरी दृष्टि में बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़ती है, वह यह कि संन्यास को बचाना तो अत्यंत जरूरी है, वह जीवन की गहरी से गहरी सुगंध है। वह जीवन का बड़ा से बड़ा सत्य है। उसे संसार से जोड़ना जरूरी है। अब संन्यासी संसार के बाहर नहीं जी सकेगा। अब उसे संसार के बीच- बाजार में, दुकान में, दफ्तर में जीना होगा। तो ही बच सकता है। अब संन्यासी अनप्रोडक्टिव होकर, अनुत्पादक होकर नहीं जी सकेगा। अब उसे जीवन की उत्पादकता में भागीदार होना पड़ेगा। अब संन्यासी दूसरे पर निर्भर होकर नहीं जी सकेगा। अब उसे स्वनिर्भर ही होना पड़ेगा। फिर मुझे समझ में नहीं आता कि कोई जरूरत भी नहीं है कि आदमी संसार को छोड़कर भाग जाए तभी संन्यास उसके जीवन में फल सके। यह अनिवार्य भी नहीं है। सच तो यह है कि जहां जीवन की सघनता है, वहीं संन्यास की कसौटी भी है। जहां जीवन का घना संघर्ष है, वहीं संन्यास के साक्षी-भाव का आनंद भी है। जहां जीवन अपनी सारी दुर्गंधों में है, वहीं संन्यास का जब फूल खिलता है तभी उसके सुगंध की परीक्षा भी है। और संसार में बड़ी ही आसानी से संन्यास का फूल खिल सकता है। एक बार हमें ख्याल आ जाए कि संन्यास क्या है तो घर से, परिवार से, पत्नी से, बच्चे से, दुकान से, दफ्तर से भागने की कोई भी जरूरत नहीं रह जाती। और जो संन्यास भागकर ही बच सकता है वह बहुत कमजोर संन्यास है। वैसा संन्यास अब आगे नहीं बच सकेगा। अब हिम्मतवर, करेजियस, साहसी संन्यासी की जरूरत है जो जिंदगी के बीच खड़ा होकर संन्यासी है। जहां है व्यक्ति वहीं रूपांतरित हो सकता है। रूपांतरण परिस्थिति का नहीं है, रूपांतरण मनः स्थिति का है। रूपांतरण बाहर का नहीं है, रूपांतरण भीतर का है। रूपांतरण संबंधों का नहीं है, रूपांतरण उस व्यक्तित्व का है, जो संबंधित होता है। आरते गावाय गासिट ने एक छोटी-सी घटना लिखी है। लिखा है कि एक घर में एक व्यक्ति मरणासन्न पड़ा है। वह मर रहा है। उसकी पत्नी छाती पीटकर रो रही है। पास में डाक्टर खड़ा है। आदमी प्रतिष्ठित है, सम्मानित है, अखबार का रिपोर्टर आकर खड़ा है मरने की खबर अखबार में देने के लिए। रिपोर्टर के साथ अखबार का एक चित्रकार भी आ गया है। वह आदमी को मरते हुए देखना चाहता है। उसे मृत्यु की एक पेंटिंग बनानी है, चित्र बनाना है। पत्नी छाती पीटकर रो रही है। डाक्टर खड़ा हुआ उदास मालूम पड़ रहा है- हारा हुआ, पराजित। प्रोफेशनल हार हो गयी है उसकी। जिसे बचाना था उसे नहीं बचा पा रहा है। पत्रकार अपनी डायरी, कलम लिए खड़ा है कि जैसे ही वह मरे, टाइम लिख ले और दफ्तर भागे। चित्रकार खड़ा होकर गौर से देख रहा है। एक ही घटना घट रही है, उस कमरे में। एक आदमी का मरना हो रहा है। लेकिन पत्नी को, डाक्टर को, पत्रकार को, चित्रकार को एक घटना नहीं घट रही है। चार घटनाएं घट रही हैं। पत्नी के लिए सिर्फ कोई मर रहा है- ऐसा नहीं, पत्नी खुद भी मर रही है। यह पत्नी के लिए कोई दृश्य नहीं है जो बाहर घटित हो रहा है, यह उसके प्राणों के प्राण में घटित हो रहा है। यह कोई और

नहीं मर रहा, वह स्वयं मर रही है। अब वह दोबारा वही नहीं हो सकेगी जो इस पति के साथ थी। उसका कुछ मर ही जाएगा सदा के लिए, जिसमें अब शायद फिर कभी अंकुर नहीं फूट सकेंगे। यह पति नहीं मर रहा है, उसके हृदय का एक कोना ही मर रहा है। पत्नी इन्वोल्व्ड है। पत्नी पूरी की पूरी इस दृश्य के भीतर है। इस पत्नी और इस पति के बीच फासला बहुत ही कम है, डाक्टर के लिए भीतर कोई भी नहीं मर रहा है, बाहर कोई मर रहा है। लेकिन डाक्टर भी उदास है, दुःखी नहीं। क्योंकि जिसे बचाने का काम था उसे वह बचा नहीं सका है। पत्नी के लिए हृदय में कुछ मर रहा है, डाक्टर के लिए बुद्धि में कुछ मरने की क्रिया हो रही है। वह सोच रहा है कि क्या और दवाएं दे सकता था तो मरीज बच सकता था। क्या इंजेक्शन जो दिए थे वे ठीक नहीं थे? क्या मेरी डायग्नोसिस निदान में कहीं कोई भूल हो गयी है, निदान में कहीं चूक गया है? अब दोबारा कोई मरीज इस बीमारी से मरता होगा तो उसे क्या करना है? डाक्टर के हृदय से उस मरीज के मरने का कोई भी संबंध नहीं है। उसके मस्तिष्क में जरूर बहुत कुछ चल रहा है। पत्रकार में तो इतना भी नहीं चल रहा है। वह बार-बार घड़ी देख रहा है कि वह आदमी मर जाए तो टाइम नोट कर ले और जाकर दफ्तर में खबर कर दे। उसके मस्तिष्क में भी कुछ नहीं चल रहा है। वह एक काम कर रहा है। वह बाहर खड़ा है, दूर, लेकिन थोड़ा-सा संबंध है उसका कि इस आदमी के मरने की खबर दे देनी है उसे जाकर और वह देकर किसी कैफे में बैठकर चाय पिएगा। खबर देकर किसी थिएटर में सिनेमा देखेगा। बात समाप्त हो जाएगी। इस आदमी से उसका इतना संबंध है कि वह कब मरता है, किस वक्त मरता है। मरने की वह भी प्रतीक्षा कर रहा है। चित्रकार के लिए आदमी मर रहा है, कि नहीं मर रहा है इससे कोई संबंध ही नहीं है। वह उस आदमी के चेहरे पर आ गयी कालिमा का अध्ययन कर रहा है। उस आदमी के चेहरे पर मृत्यु के क्षण में जीवन की जो अंतिम ज्योति झलकेगी उसे देख रहा है। वह कमरे में घिरते हुए अंधेरे को देख रहा है। वह चारों तरफ से जिस मौत के साए ने उस कमरे को पकड़ लिया है, उसे देख रहा है। उसके लिए आदमी के मरने की वह घटना रंगों का एक खेल है। वह रंगों को पकड़ रहा है, क्योंकि उसे एक मृत्यु का चित्र बनाना है। वह आदमी बिल्कुल आउट साइडर है। उसे कोई भी लेना-देना नहीं। यह आदमी मरे कि दूसरा आदमी मरे कि तीसरा आदमी मरे- उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। कि वह पत्नी मरे, वह डाक्टर मरे, वह पत्रकार मरे, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। ए बी सी डी कोई भी मरे, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। मृत्यु का रंगों में क्या रूप है, वह उसे पकड़ने में लगा है। मृत्यु से उसका कोई भी संबंध नहीं है। परिस्थिति एक है लेकिन मनः स्थिति चार हैं- चार हजार भी हो सकती हैं। जीवन वही है संसारी का भी, संन्यासी का भी, लेकिन मनः स्थिति भिन्न है। वही सब घटेगा जो घट रहा है। वही दुकान चलेगी, वही पत्नी होगी, वही बेटे होंगे, वही पति होगा, लेकिन संन्यासी की मनः स्थिति और है। वह जिंदगी को किन्हीं और दृष्टिकोणों से देखने की कोशिश कर रहा है। संसारी की मनः स्थिति और है। संसार और संन्यास मनः स्थितियां, मेंटल एटिट्यूडस हैं। इसलिए परिस्थितियों से भागने की कोई भी जरूरत नहीं है। परिस्थितियों को बदलने की कोई भी जरूरत नहीं है और बड़े आश्चर्य की बात है कि जब मनः स्थिति बदलती है तो परिस्थिति वही नहीं रह जाती। क्योंकि परिस्थिति वैसी ही दिखाई पड़ने लगती है, जैसी मनः स्थिति होती है। जो आदमी संसार छोड़कर, भागकर संन्यासी हो रहा है वह अभी भी संसारी है। क्योंकि उसका भी विश्वास परिस्थिति पर है। वह भी सोचता है कि परिस्थिति बदल लूंगा तो सब बदल जाएगा। वह अभी संसारी है। संन्यासी वह है जो कहता है कि मनः स्थिति बदलेगी तो सब बदल जाएगा। मनः स्थिति बदलेगी तो सब बदल जाएगा, ऐसा जिसका भरोसा है, ऐसी जिसकी समझ है वह आदमी संन्यासी है। और जो सोचता है कि परिस्थिति बदल जाएगी तो सब बदल जाएगा ऐसी मनः स्थिति संसारी की है, ऐसा आदमी संसारी है। मेरा जोर परिस्थिति पर बिल्कुल नहीं है, मनः स्थिति पर है। एक ऐसा संन्यास ही बच सकता है और मैं कहना चाहता हूं कि संन्यास बचाने जैसी चीज है। पश्चिम ने विज्ञान दिया है। वह पश्चिम का कंट्रिब्यूशन, योगदान है, मनुष्य के लिए। पूरब नें संन्यास दिया है, वह पूरब का कंट्रिब्यूशन, योगदान है संसार के लिए। जगत को पूरब ने जो श्रेष्ठतम दिया है वह संन्यास है। जो श्रेष्ठतम व्यक्ति दिए हैं वे बुद्ध हैं, महावीर

हैं, कृष्ण हैं, क्राइस्ट हैं, मुहम्मद हैं। ये सब पूरब के लोग हैं। क्राइस्ट भी पश्चिम के आदमी नहीं हैं। ये सब एशिया से आए हुए लोग हैं। शायद आपको पता न हो, यह एशिया शब्द कहां से आ गया है। बहुत पुराना शब्द है, कोई आज से छह हजार साल पुराना शब्द है। और बेबीलोन में पहली दफा इस शब्द का जन्म हुआ। बेबीलोनियन भाषा में एक शब्द है "असू", असू से एशिया बना। असू का मतलब होता है सूर्य का उगता हुआ देश। जो जापान का अर्थ है वही एशिया का अर्थ भी है- जहां से सूरज उगता है, जिस जगह से सूर्य उगा है वहीं से जगत को सारे संन्यासी मिले। यूरोप शब्द का ठीक उल्टा मतलब है। यूरोप शब्द भी अशीरियन भाषा का शब्द है। वह जिस, "अरेश" शब्द से बना है, उस शब्द का मतलब है सूरज के डूबने का देश- संध्या का, अंधेरे का, जहां सूर्यास्त होता है। वे जो सूर्यास्त के देश हैं उनसे विज्ञान मिला है, वैज्ञानिक मिला है। जो पूर्वोदय के देश हैं, सुबह के, उनसे संन्यास मिला है। इस जगत को अब तक जो दो बड़ी से बड़ी देन मिली हैं, दोनों छोरों से वह एक विज्ञान की है। स्वभावतः विज्ञान वहीं मिल सकता है जहां भौतिक की खोज हो। स्वभावतः संन्यास वहीं मिल सकता है जहां अभौतिक की खोज हो। विज्ञान वहीं मिल सकता है जहां पदार्थ की गहराइयों में उतरने की चेष्टा हो और संन्यास वहीं मिल सकता है जहां परमात्मा की गहराइयों में उतरने की चेष्टा हो। जो अंधेरे से लड़ेंगे वे विज्ञान को जन्म दे देंगे। और जो सुबह के प्रकाश को प्रेम करेंगे वे परमात्मा की खोज पर निकल जाते हैं। यह जो पूरब से संन्यास मिला है यह संन्यास खो सकता है भविष्य में। क्योंकि संन्यास की अब तक जो व्यवस्था थी उस व्यवस्था के मूल आधार टूट गए हैं। इसीलिए मैं देखता हूं इस संन्यास को बचाया जाना जरूरी है। और यह बचाया जाएगा अब आश्रमों में नहीं, वनों में नहीं, हिमालय पर नहीं। वह तिब्बत का संन्यासी नष्ट हो गया है, शायद गहरे से गहरा संन्यासी तिब्बत के पास था, लेकिन वह विदा हो रहा है, वह विदा हो जाएगा, वह बच नहीं सकता है। अब संन्यासी बचेगा फैक्टरी में, दुकान में, बाजार में, स्कूल में, यूनिवर्सिटी में। जिंदगी जहां है, अब संन्यासी को वहीं खड़ा हो जाना पड़ेगा। और संन्यासी जगह बदल ले इसमें बहुत अड़चन नहीं है। संन्यास नहीं मिटना चाहिए। इसीलिए मैं जिंदगी को भीतर से संन्यास देने के पक्ष में हूं। जो जहां है वहीं संन्यासी हो जाए सिर्फ रुख बदले, मनः स्थिति बदले। हिंसा की जगह अहिंसा उसकी मनः स्थिति बने, परिग्रह की जगह अपरिग्रह उसकी समझ बने, चोरी की जगह अचौर्य उसका आनंद हो, काम की जगह अकाम पर उसकी दृष्टि बढ़ती चली जाए, प्रमाद की जगह अप्रमाद उसकी साधना बने तो व्यक्ति जहां है, जिस जगह है वहीं मनः स्थिति बदल जाएगी और सब बदल जाता है। इसलिए मैं जिन्हें संन्यासी कह रहा हूं वे जगत से भागे हुए लोग नहीं हैं। वे जहां हैं, वहीं रहेंगे। और यह बड़े मजे की बात है! आज तो जगत से भागना ज्यादा आसान है, आज जगत में खड़े होकर संन्यास लेना बहुत कठिन है। भाग जाने में तो अड़चन नहीं है, लेकिन एक आदमी जूते की दुकान करता है और वहीं संन्यासी हो गया है तो बड़ी अड़चनें हैं। क्योंकि दुकान वहीं रहेगी, ग्राहक वही रहेंगे, जूता वही रहेगा। बेचना वही है, बेचनेवाला, लेनेवाला, सब वही हैं। और एक आदमी अपनी पूरी मनः स्थिति बदलकर वहां जी रहा है। सब पुराना है। सिर्फ एक मन बदलने की आकांक्षा से भरा है। इस सब पुराने के बीच इस मन को बदलने में बड़ी दुरूहता होगी, यही तपश्चर्या है। इस तपश्चर्या से गुजरना अद्भुत अनुभव है। और ध्यान रहे, जितना सस्ता संन्यास मिल जाए उतना ही गहरा नहीं हो पाता, जितना महंगा मिले उतना ही गहरा हो जाता है। संसार में खड़े होकर संन्यासी होना बड़ी तपश्चर्या की बात है। दूसरी बात, अब तक संन्यास एक इंस्टिट्यूशनलाइज्ड, एक संस्थागत व्यवस्था हो गयी थी। और संन्यासी कभी भी इंस्टिट्यूशन, संस्था नहीं बन सकता। और जब भी संन्यास संस्था बनेगा तब संन्यास की जो खूबी हैं, जो रस हैं, जो उसका रहस्य है वह सब विदा हो जाएगा। संन्यास को जैसे ही संस्था बनाया जाता है वैसे ही संन्यास मर जाता है। संन्यास व्यक्तिगत अनुभूति है। संन्यास एक-एक व्यक्ति के भीतर खिलता है, जैसे प्रेम खिलता है। अब प्रेम को कोई संस्था नहीं बना सकता। प्रेम एक-एक व्यक्ति के जीवन में खिलता है, और फैलता है। ऐसे ही संन्यास परमात्मा का प्रेम है, वह भी एक-एक व्यक्ति के जीवन में खिलता है

और फैलता है। इसलिए संन्यासियों की संस्थाओं की कोई भी जरूरत नहीं है। संस्थागत संन्यासी, संन्यासी नहीं रह जाता। असल में संस्था हम बनाते ही इसलिए हैं, सुरक्षा के लिए, सिक्योरिटी के लिए। और संन्यासी वह है जिसने असुरक्षा में, खतरे में जीने का प्रण लिया है; जो खतरे में, असुरक्षा में जीने की हिम्मत जुटा रहा है। इसलिए आगे संन्यास संस्था से बंधा हुआ नहीं हो सकता है- व्यक्तिगत होगा, व्यक्तिगत मौज होगी। जब भी संन्यास संस्था बनेगा तो संन्यास में एक बहुत ही बेहूदी बात जुड़ जाएगी। और वह यह होगी कि संन्यास में एंट्रेंस प्रवेश-द्वार तो होगा, एजिक्ट, निकास-द्वार नहीं होगा। संन्यास के मंदिर में प्रवेश तो होगा लेकिन बाहर निकलने का कोई द्वार नहीं होगा। और जिस जगह पर भी प्रवेश हो और बाहर निकलने का द्वार न हो वह चाहे मंदिर ही क्यों न हो, वह बहुत थोड़े दिनों में कारागृह हो जाता है। क्योंकि वहां परतंत्रता निश्चित हो जाती है। इसलिए मैं संन्यासी को उसके व्यक्तिगत निर्णय पर छोड़ता हूं। वह उसकी मौज है कि वह संन्यासी होने का निर्णय लेता है। वह कल वापस लौट जाना चाहता है अपनी सहज परिस्थिति, अपनी सहज मनः स्थिति में तो इस जगत में कोई भी उसकी निंदा करने को नहीं होना चाहिए। निंदा का कोई कारण नहीं है। यह उसकी व्यक्तिगत बात थी। उसने निर्णय लिया था, वह वापस लौट जाएगा। इसके दोहरे परिणाम होंगे। बहुत ज्यादा लोग संन्यास ले सकते हैं, अगर उन्हें यह निर्णय हो कि कल अगर उन्हें ठीक न पड़े तो अपनी मनः स्थिति के निर्णय को वापस लौट सकते हैं। परसों उन्हें फिर लगे कि हिम्मत अब ज्यादा है, अब हम फिर प्रयोग कर सकते हैं तो फिर वापस लौट सकते हैं। संन्यास संस्थाबद्ध हो तो फिर दुराग्रह शुरू होता है कि कोई संन्यासी वापस नहीं लौट सकता। और जब संन्यासी वापस नहीं लौट सकता तो सब संन्यासियों की संस्थाएं कारागृह बन जाती हैं। क्योंकि जाते वक्त व्यक्ति को बहुत कुछ पता नहीं होता। बहुत कुछ तो जाकर ही पता चलता है भीतर से कि क्या है, और जब भीतर से पता चलता है तो वह वापस लौटने की स्वतंत्रता खो चुका होता है। मैं सैकड़ों संन्यासियों को जानता हूं जो दुःखी हैं, क्योंकि वे वापस नहीं लौट सकते। और संन्यास कोई कारागृह नहीं होना चाहिए। इसलिए दूसरा सूत्र जो इस नए संन्यास की धारणा में मैं जोड़ना चाहता हूं, वह यह है कि संन्यास व्यक्तिगत निर्णय है। उसके ऊपर न किसी दूसरे का कोई दबाव है, न किसी दूसरे से उसका कोई संबंध है। यह एक व्यक्ति की अपनी सूझ है, यह एक व्यक्ति की अपनी अंतर्दृष्टि है, वह जाए, लौटे। इसी के साथ एक और बात पीरियाडिकल रिनंसिएशन, सावधिक संन्यास के संबंध में कहना चाहता हूं। मैं मानता हूं, प्रत्येक व्यक्ति को आजीवन संन्यास का आग्रह नहीं लेना चाहिए। असल में आजीवन के लिए आज कोई निर्णय लिया भी नहीं जा सकता। कल का क्या भरोसा! कल के लिए मैं क्या कह सकता हूं! आज जो मुझे ठीक लगता है, कल गलत लग सकता है। और अगर मैं पूरे जीवन का निर्णय लेता हूं तो इसका मतलब यह हुआ कि कम अनुभवी आदमी ने ज्यादा अनुभवी आदमी के लिए निर्णय लिया। मैं बीस साल बाद ज्यादा अनुभवी हो जाऊंगा। बीस साल पहले का मेरा निर्णय बीस साल बाद के ज्यादा अनुभवी आदमी की छाती पर पत्थर बन जाएगा। बच्चे के निर्णय बूढ़े के लिए लागू नहीं होने चाहिए। लेकिन दस साल का बच्चा संन्यास ले सकता है और सत्तर साल का बूढ़ा फिर जिंदगीभर पछता सकता है, क्योंकि वह संन्यास आजीवन है। नहीं, कोई संन्यास आजीवन नहीं हो सकता। इस जीवन में सभी चीजें सावधिक हैं, पीरियाडिकल हैं, और संन्यास जैसी कीमती चीज तो सिर्फ अवधिगत होनी चाहिए। एक व्यक्ति लेता है जानने के लिए, जिज्ञासा के लिए, खोज के लिए। अगर संन्यास में कुछ रस है तो संन्यास रोक लेगा, यह दूसरी बात है, लेकिन आप अपने निर्णय से जबरदस्ती रुकेंगे तो संन्यास के रस पर आपका भरोसा नहीं है। और मैं तो मानता हूं कि जो व्यक्ति संन्यास में एक बार जाएगा वह लौटेगा नहीं, लेकिन यह संन्यास के अनुभव में सामर्थ्य होना चाहिए कि वह न लौटे। यह सिर्फ कसम और नियम, लॉ और कानून नहीं होना चाहिए। लेकिन व्यक्ति को इसी भाव से संन्यास में प्रवेश करना चाहिए कि मैं मुक्त प्रवेश करता हूं। कल मुझे अगर लगे कि प्रवेश गलत हुआ, निर्णय में भूल थी तो मैं वापस लौट सकता हूं। हर आदमी को अपनी भूल से सीखने का हक होना चाहिए, और भूल से ही सीख मिलती है। इस दुनिया में सीखने का कोई उपाय

भी नहीं है। लेकिन जहां भूल परमानेंट करनी पड़ती हो कि हम उससे सीख ही न सकें तो फिर वहां जिंदगी में ज्ञान की जगह अज्ञान आरोपित हो जाता है। इसलिए आजीवन संन्यास ने संन्यासी को ज्ञानी कम अज्ञानी बनाने में ज्यादा सहयोग दिया है। दो मुल्क हैं पृथ्वी पर जहां पीरियाडिकल रिनंसिएशन की अलग व्यवस्था है। आजीवन संन्यास की व्यवस्था भी है बर्मा में, थाइलैंड में, और सावधिक संन्यास की व्यवस्था भी है। कोई व्यक्ति साल में तीन महीने के लिए संन्यासी हो जाता है। इसलिए बर्मा में लाखों लोग मिल जाएंगे जो संन्यासी रह चुके हैं- कोई तीन महीने को, कोई छह महीने को, कोई सालभर को। सिर्फ दो-चार वर्ष में सुविधा होती है तो वह आदमी फिर तीन-चार महीने के लिए संन्यासी की दुनिया में चला जाता है। एक आदमी अगर अपने चालीस साल के अनुभव की जिंदगी में दस बार महीने-महीने भर के लिए भी संन्यासी हो जाए तो मरते वक्त वह वही आदमी नहीं होगा, जो वह आदमी होगा जिसने कभी संन्यास की जिंदगी में प्रवेश नहीं किया। साल में अगर एक महीने के लिए भी कोई संन्यासी हो जाए तो आदमी वही नहीं लौटेगा जो था। बाकी आनेवाले ग्यारह महीने, वर्ष के, दूसरे हो जानेवाले हैं। सारी जिंदगी तो व्यक्ति के भीतर से निकलती है। तो मैं तो मानता हूं कि आजीवन संन्यास लेने की जरूरत ही नहीं है, आजीवन हो जाए यह सौभाग्य है, आजीवन फैल जाए, यह परमात्मा की कृपा है। लेकिन अपनी तरफ से तो एक पल का निर्णय भी बहुत है, आज का निर्णय काफी है। तीसरी बात, अब तक जगत में जितने भी संन्यास के रूप हुए हैं वे सभी संप्रदायों से बंधे हुए थे, इसलिए संन्यासी कभी भी मुक्त नहीं हो पाया। कोई संन्यासी हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है, कोई बौद्ध है, कोई ईसाई है। कम-से-कम संन्यासी तो सिर्फ "धार्मिक" होना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि वह मस्जिद न जाए, वह मंदिर न जाए, यह उसकी मौज है, वह कुरान पढ़े या गीता पढ़े, यह उसकी पसंद है। वह जीसस को प्रेम करे कि बुद्ध को प्रेम करे, यह उसकी अपनी बात है। लेकिन संन्यासी होते ही वह व्यक्ति किसी संप्रदाय का नहीं रह जाना चाहिए, क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति संन्यासी हुआ, अब कोई धर्म उसका अपना नहीं, क्योंकि सभी धर्म अब उसके अपने हो गए। इसलिए संन्यास में एक तीसरी बात भी मैं जोड़ना चाहता हूं, वह है- गैर-सांप्रदायिकता। संप्रदाय के पार संन्यासी को होना चाहिए। और अगर इस पृथ्वी पर हम ऐसे संन्यासी पैदा कर सकें जो ईसाई नहीं हैं, हिंदू नहीं हैं, जैन नहीं हैं, बौद्ध नहीं हैं तो हम इस जगत को धार्मिक बनाने के रास्ते पर आसानी से ले जा सकेंगे। और अगर संन्यासी हिंदू, बौद्ध और जैन न रह जाए तो आदमी-आदमी को लड़ाने के बहुत से आधार गिर जाएंगे और आदमी-आदमी को जोड़ने के बहुत से सेतु फैल जाएंगे। इसलिए संन्यासी को मैं सिर्फ धार्मिक कहता हूं- रिलिजस माइंड। उसका किसी धर्म-विशेष से कोई लेना-देना नहीं है, क्योंकि सारे धर्म उसके अपने हैं। यह दूसरी बात है उसे गीता से प्रेम है और गीता पढ़ता है, यह दूसरी बात है कि उसे कृष्ण से प्रेम है और वह कृष्ण के गीत गाता है। यह दूसरी बात है कि उसे जीसस से मुहब्बत है और वह जीसस के चर्च में जाता है। ये बिल्कुल दूसरी बातें हैं, ये उसकी व्यक्तिगत बातें हैं। लेकिन अब वह ईसाई नहीं है, जैन नहीं है, हिंदू नहीं है, बौद्ध नहीं है। और कल अगर उसे किसी गांव का मंदिर बुलाता है तो मंदिर में रुकता है, मस्जिद बुलाती है तो मस्जिद में रुक जाता है, चर्च आमंत्रण देता है तो चर्च का मेहमान हो जाता है। अगर हम पृथ्वी पर लाख दो लाख संन्यासी भी धर्मों के पार निर्मित कर सकें तो हम दुनिया में आदमी-आदमी के बीच के वैमनस्य को गिराने के लिए सबसे बड़ा कदम उठा सकते हैं। इस तरह संन्यास को मैं तीन हिस्सों में बांट देना पसंद करता हूं, तो आपको समझने में आसान हो जाएगा। वे लोग जो अपनी जिंदगी को जैसा चला रहे हैं वैसा ही चलाकर संन्यासी होना चाहते हैं, वे वैसे ही संन्यासी हो जाएं। सिर्फ संन्यास की घोषणा अपने और जगत के प्रति कर दें, संन्यास का निर्णय अपने और जगत के प्रति ले लें, लेकिन जहां हैं, उसमें रत्तीभर फर्क न करें। जो हैं, उसमें फर्क करना शुरू कर दें। लेकिन बहुत लोग हैं- ढेर वृद्ध मुझे मिलते हैं जो घरों में तकलीफ में पड़ गए हैं, क्योंकि घरों में अब उनका कोई संबंध नहीं है। आनेवाली पीढ़ियों को उनमें कोई रस नहीं है, सारे सेतु उनके बीच टूट गए हैं, वृद्धों को तो निश्चित ही आश्रमों में

पहुंच जाना चाहिए। इस मुल्क में एक व्यवस्था थी, उस व्यवस्था के टूट जाने के बाद शायद जिसको हम जनरेशन गैप कहते हैं वह पैदा हुआ, सारी दुनिया में पैदा हुआ। उसे हम पीढ़ियों का फासला कहते हैं। इस मुल्क की एक व्यवस्था थी कि पच्चीस साल तक के विद्यार्थी को हम जंगल में रखते थे और पचहत्तर साल के बाद जो बूढ़े थे, संन्यासी थे उनको जंगल में रखते थे। वह पचहत्तर साल के जो बूढ़े संन्यासी थे वे जंगल में गुरु का, शिक्षक का काम देते। और वह जो पच्चीस साल के युवा, पच्चीस साल से छोटे बच्चे पढ़ने आते जंगलों में, वे विद्यार्थी का काम कर देते। हम पहली पीढ़ी की आखिरी पीढ़ी से मुलाकात करवा देते थे, उन दोनों के बीच डायलॉग हो जाता था, उन दोनों के बीच संबंध हो जाता था। सत्तर साल, पचहत्तर साल का बूढ़ा पांच और दस साल के बच्चों से मुलाकात ले लेता था --... सत्तर-पचहत्तर साल में जो उसने जिंदगी से जाना और सीखा! और बहुत कुछ चीजें हैं जो युनिवर्सिटीज में नहीं सीखी जातीं, सिर्फ जिंदगी के अनुभव में सीखी जाती हैं। जिस दिन से हमें यह ख्याल पैदा हो गया कि सारा ज्ञान विश्वविद्यालय से मिल सकता है, उस दिन से दुनिया में ज्ञान तो बहुत है लेकिन विज़डम, प्रज्ञा बहुत कम होती चली गई है। युनिवर्सिटीज में भला ज्ञान मिल जाए, प्रज्ञा, विज़डम नहीं मिलती है। विज़डम तो जिंदगी की ठोकरों और टक्करों और संघर्षां में ही मिलती है, वह तो जिंदगी से गुजरकर ही मिलती है। तो हम सबसे ज्यादा बूढ़े व्यक्ति को अपने सबसे ज्यादा छोटे बच्चे से मिला देते थे ताकि दोनों पीढ़ियां मिल जातीं, ताकि विदा होती पीढ़ी, डूबता हुआ सूरज उगते हुए सूरज से मुलाकात ले जाए और जो बारह घंटे की यात्रा पर उसने पाया है वह उगते हुए सूरज को दे जाए। वह संबंध टूट गया है। उसके खतरनाक परिणाम हुए हैं। पीढ़ियों के बीच फासला बढ़ गया है। बूढ़े और बच्चों के बीच कोई डायलॉग नहीं है, बूढ़े और बच्चों के बीच कोई बातचीत नहीं है। बूढ़े की भाषा न बच्चे समझते हैं, न बच्चे की भाषा बूढ़े समझ पाते हैं। बूढ़े बच्चों पर नाराज हैं, बच्चे बूढ़ों पर हंस रहे हैं, वह उनकी नाराजगी का ढंग है। अगर जीवन में एक तारतम्य न रह जाए और जीवन में पीढ़ियां इस तरह दुश्मन की तरह खड़ी हो जाएं तो जिंदगी एक अराजकता बन जाती है। उस जिंदगी से सारा संगीत खो जाता है। तो मेरी दृष्टि में है कि एक तो संन्यासी जो अपने घरों में अपनी जिम्मेवारियों के बीच में संन्यासी होंगे, लेकिन कल उनमें से बहुत लोग जिम्मेवारियों से बाहर हो जाएंगे। बहुत-से लोग आज जिम्मेवारियों के बाहर हैं, जिन पर कोई जिम्मेवारी नहीं है, वे घरों में बोझ भी हो जाते हैं क्योंकि जो सदा से काम से भरे रहे हैं, खाली होना उन्हें बहुत मुश्किल होता है। तब वे बेकार के काम करने लगते हैं जिनसे दूसरों के काम में बाधा पड़नी शुरू हो जाती है। उन्हें जिंदगी की भीड़ और बाजार को छोड़कर जरूर आश्रम की दुनिया में चले जाना चाहिए। वहां वे साधना भी करें, ध्यान भी करें, परमात्मा को भी खोजें और उन्हें जो मिल जाए वह बच्चों को बांटे। और गांवों के जो बच्चे उनके पास कभी महीने दो महीने के लिए आकर बैठते रहें, ज्यादा देर भी रह सकते हैं क्योंकि मैं तो मानता ही यह हूं कि ऐसे आश्रम ही युनिवर्सिटीज बन जाने चाहिए। इन बच्चों को वे अपना सारा --... सब कुछ दे जाएं, जो उन्होंने जाना है। ऐसे युवक भी हो सकते हैं जिनके व्यक्तित्व की दिशा ऐसी है कि वे नहीं जाना चाहते संसार में तो उन्हें जरूरी भेजना --... आवश्यक नहीं है। ढेरों लोग हैं जिनके पिछले जन्मों की यात्रा उस जगह उन्हें ले आयी है कि उनके विवाह का कोई अर्थ नहीं होगा। उनके लिए अब जगत में बहुत अर्थ नहीं होगा। अगर ऐसे लोग हैं तो उन्हें जबरदस्ती जगत में डालना वैसा ही पागलपन है जैसे किसी आदमी को, जिसे अभी विवाह करना था, जबरदस्ती दीक्षा दे देना पागलपन है। नहीं, जिनकी जिंदगी में सहज ही सुगंध है और जो घर छोड़कर इस घेरे के बाहर जीना चाहते हैं वे जरूर आश्रमों में जिएं यद्यपि उनके आश्रम प्रोडक्टिव, उत्पादक होने चाहिए। वहां वे खेती भी करें, बगीचे भी लगाएं, फैक्टरी भी चलाएं, स्कूल भी चलाएं, अस्पताल भी चलाएं, वे वहां भी पैदा करें और उस पैदावार पर ही जिएं। ये तीनों दिशाओं में ----और जो लोग इन तीनों में से कुछ भी नहीं कर सकते वे इतना तो कर सकते हैं कि वर्ष में पंद्रह दिन हाली-डे पर चले जाएं। अंग्रेजी का यही हाली-डे शब्द बहुत अच्छा है। "हाली-डे" का मतलब छुट्टी का

दिन नहीं होता। हाली-डे का मतलब है, पवित्र दिन। वह जो रविवार है वह अंग्रेजों के लिए, पश्चिम में हाली-डे है, पवित्र दिन है, क्योंकि उस दिन परमात्मा ने भी काम छोड़ दिया था दुनिया बनाकर। उस दिन उसने आराम किया था। छह दिन उसने दुनिया बनायी, सातवें दिन वह भी संन्यासी हो गया। सातवें दिन उसने आराम किया। जो छह दिन काम कर रहे हैं सातवें दिन उनको भी आराम चाहिए। जो सालभर काम कर रहे हैं वह भी महीनेभर के लिए हाली-डे पर चले जाएं, पवित्र दिनों में चले जाएं! छोड़ दें, भूल जाएं इस दुनिया को एक महीने के लिए, डूब जाएं किसी और यात्रा में। एक महीने संन्यासी की तरह किसी आश्रम में जीकर लौटें। तब आप दूसरे आदमी होकर लौटेंगे, आप कुछ आत्मिक होकर लौटेंगे, आंतरिक होकर लौटेंगे। दुनिया यही होगी लेकिन आपका दृष्टिकोण बदला हुआ होगा। मेरे लिए संन्यास का ऐसा अर्थ है। और यह व्यक्तिगत निर्णय और चुनाव है। और ऐसा संन्यास अगर पृथ्वी पर फैलाया जा सका तो हम पृथ्वी से संन्यास को मिटने से रोक सकते हैं अन्यथा अब बहुत कठिन मामला है कि संन्यास बच सके। साम्यवाद की हवा जितनी जोर से फैलेगी, संन्यास की हत्या उतनी ही व्यवस्था से होती चली जाएगी। आज चीन में, जहां कल बुद्ध की प्रतिमा रखी थी वह प्रतिमा तो तोड़ डाली गई और माओ का फोटो लटका दिया गया है। आज चीन में बच्चों के स्कूल की दीवारों पर जो वचन लिखे हैं वे बहुत हैरानी के हैं। एक स्कूल की दीवार पर चीन में लिखा हुआ है कि जो बच्चा माओ की किताब एक दिन नहीं पढ़ता उसकी भूख मर जाती, जो बच्चा माओ की किताब दो दिन नहीं पढ़ता उसकी नींद चली जाती, जो बच्चा माओ की किताब तीन दिन नहीं पढ़ता वह बीमार पड़ जाता, जो बच्चा माओ की किताब चार दिन नहीं पढ़ता उसकी जिंदगी अंधकारपूर्ण हो जाती है। माओ की किताब में ऐसा कुछ भी नहीं है कि कोई भी बच्चा दुनिया में कहीं भी उसे पढ़े, लेकिन स्कूल के बच्चों को ऐसा समझाया जा रहा है! एक यात्री चीन गया था तो एक मॉनेस्ट्री के पास से गुजर रहा था, एक पहाड़ पर बने हुए आश्रम के पास से। तो उसने अपने गाइड से पूछा कि ऊपर जो आश्रम दिखाई पड़ता है पर्वत पर वहां साधु रहते होंगे? तो उस गाइड ने कहा, माफ करिए, आप बड़े पुरानी बुद्धि के आदमी मालूम पड़ते हैं, वहां कम्युनिस्ट पार्टी का दफ्तर है। साधु अब वहां नहीं रहते, पहले रहते थे। लेकिन शोषक दिन समाप्त हुए, अब उन शोषकों की जगह नहीं है चीन में, अब वहां कम्युनिस्ट पार्टी का दफ्तर है। बुद्ध की जगह माओ को बिठा दिया जाएगा, आश्रमों की जगह कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर हो जाएंगे। कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तरों में ऐसा कुछ बुरा नहीं है, माओ की तस्वीर में ऐसा कुछ बुरा नहीं है, लेकिन जिस जगह उसे रखा जा रहा है उसमें जगत बहुत कुछ खो देगा। कहां बुद्ध, कहां माओ? कहां बुद्ध के जीवन का आनंद, कहां बुद्ध के जीवन का प्रेम, और करुणा, कहां बुद्ध की ऊंचाइयां, कहां बुद्ध के चित्त पर उतरा हुआ निर्वाण, कहां बुद्ध के एक-एक वचन का अमृत, और कहां माओ! उससे कोई भी तुलना नहीं ----उससे कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन यह हो रहा है, यह सारी दुनिया में होगा। यह कलकत्ते में हो रहा है, यह बंबई में होगा। कलकत्ते की दीवारों पर लिखा हुआ है जगह-जगह कि चीन के अध्यक्ष माओ हमारे भी अध्यक्ष हैं। कलकत्ता और बंबई में कुछ ज्यादा फासला नहीं है। और जो हाथ कलकत्ते की दीवार पर लिख रहे हैं उन हाथों में और बंबई के हाथों में बहुत फर्क मुझे नहीं दिखायी पड़ता। इस जगत में धर्म का फूल तिरोहित हो जाए- अगर कोई ऐसा चाहता हो तो संन्यास की पुरानी धारणा से चिपके रहना चाहिए और इस जगत में धर्म के फूल को बचाना हो तो संन्यास की नई धारणा को जन्म देना जरूरी है।

नव-संन्यास क्या?
पांचवां प्रवचन

आनंद व अहोभाव में डूबा हुआ नव-संन्यास

अभी-अभी साधना मंदिर में जो भजन चल रहा था उसे देखकर मुझे एक बात ख्याल में आती है। वहां सब इतना मुर्दा, इतना मरा हुआ था जैसे जीवन की कोई लहर नहीं है। सब औपचारिक था- करना है, इसलिए कर लिया। तुम्हारा भजन, तुम्हारा नृत्य, तुम्हारा जीवन जरा भी औपचारिक न हो, फॉरमल न हो। उदासी के लिए तो नव-संन्यास में जरा भी जगह न हो। क्योंकि संन्यास अगर मरा तो उदास लोगों के हाथ में पड़कर मरा। "हंसता हुआ संन्यास", पहला सूत्र तुम्हारे ख्याल में होना चाहिए। अगर हंस न सको तो समझना कि संन्यासी नहीं हो। पूरी जिंदगी एक हंसी हो जानी चाहिए। संन्यासी ही हंस सकता है। उदासी एवं गंभीरता संन्यासी के लिए एक रोग जैसा है। इसलिए आज तक संन्यासी होना एक ऐसा बोझ-सा और भारी गंभीरता का काम कर रहा है, जिसमें सिर्फ रुग्ण और बीमार आदमी ही उत्सुक होते रहे हैं। स्वस्थ आदमी न तो उदास हो सकता, न गंभीर हो सकता। नव-संन्यासी तो नाचता-गाता, प्रसन्न होगा। इसका यह मतलब नहीं है कि वह उथला होगा। सच तो यह है कि गंभीरता गहरेपन का सिर्फ धोखा है। वह गहरी होती नहीं, सिर्फ दिखावा है। जितना गहरा आदमी होगा उतना फ्रुल्ल होगा। जितना भीतर जाएगा, उतना बाहर प्रसन्न होता चला जाएगा। भीतर जाने की परीक्षा और कसौटी ही यही है कि वह कितना बाहर प्रसन्न और हलका होता चला जाता है। जिंदगी बाहर उड़ने लगे, वेटलेस, भारशून्य हो जाए तभी समझना कि भीतर गति हो रही है। इस मुल्क में संन्यास को हंसता हुआ बनाना पहला बड़ा काम है। गांव-गांव, गली-गली, घर-घर हंसी गूंज जाए। संन्यासी हमारा जहां प्रवेश करे वहां फ्रुल्लता छा जाए, वहां उदासी न बचे। हमारे संन्यासी को कोई कहीं देखे तो खुशी से भर जाए। उसके चेहरे, उसके व्यक्तित्व, उसके ढंग, उसके पूरे जीवन से प्रसन्नता निकले। लेकिन यह इसलिए कहता हूं कि संन्यास के साथ गंभीर होना ऐसोसिएट, संयुक्त हो गया है। तुम्हारा चूंकि पहला ग्रुप, समूह होगा संन्यासियों का, तुम पर बहुत कुछ निर्भर करेगा कि तुम्हारे पीछे जो लोग आएंगे ----अगर तुम उदास रहे तो वे उदास होते चले जाएंगे। आदमी बिल्कुल "इमिटेटिव" है, बिल्कुल नकलची है। एक कमरे में अगर बीस आदमी उदास बैठे हैं तो जो आएगा वह भी उदास हो जाएगा। सोचेगा कि हमने कोई गड़बड़ी की तो फंस जाएंगे। तो तुम पर बहुत कुछ निर्भर करेगा। तुम पर सब कुछ निर्भर करेगा कि तुम्हारे पीछे जो लोग आएंगे, तुम जैसे होओगे, वे वैसे बनते चले जाएंगे। फिर जो धर्म हंस नहीं सकता वह धर्म बहुत नहीं फैल सकता, क्योंकि इस जगत में कोई भी रोना नहीं चाहता। जो रो रहा है, वह भी मजबूरी में रो रहा है, वह भी रोना नहीं चाहता। जो उदास है वह भी मजबूरी में उदास है, वह भी उदास होना नहीं चाहता। इसलिए अगर हम उदास तरह की व्यवस्था बना लें तो उसमें थोड़ा-सा उदास वर्ग उत्सुक हो जाता है। हम हंसते हुए, जीवन को कहीं अस्वीकार नहीं करते, नकारते नहीं, उसे पूरा परमात्मा मानकर स्वीकार करते हैं, उसे नृत्यपूर्वक स्वीकार करते हैं, अहोभावपूर्वक स्वीकार करते हैं। तो मैंने जो कहा कि तुम जाओ सड़कों पर और गांव में और नाचो और गाओ, वह किसी भगवान की स्तुति में उतना नहीं जितना तुम्हारे आनंद की अभिव्यक्ति है। वह किसी भगवान की स्तुति का उतना सवाल नहीं है, जितना तुम्हारी प्रसन्नता को खिलने-फूलने का मौका मिले, उसका सवाल है। और भगवान की स्तुति तो हो ही जाती है, जब भी हम आनंदित होकर एक क्षण भी जीते हैं तो हमारे आनंद का वह फूल उसके चरणों में पहुंच जाता है। अभी वहां देखकर मुझे ख्याल आया कि वैसी भूल तुमसे नहीं होनी चाहिए। तुम अपने गीत में, नृत्य में व्यवस्था भी देना तो भी व्यवस्था को गौण रखना, प्राण को ही प्रमुख रखना। व्यवस्था होगी, लेकिन वह गौण होगी। उसको तोड़ने की हिम्मत तुममें सदा हो। किसी विशेष ढांचे में ही नाचना है, ऐसा भी नहीं है। लेकिन तोड़ने की हिम्मत भी किसी क्षण में होनी चाहिए। क्योंकि जब बहुत व्यवस्था ऊपर बैठ जाती है, बहुत नियम और बहुत ढांचा बन जाता है तो भीतर से प्राण सिकुड़ जाते हैं और मर जाते

हैं। तो तुमसे मुझे बहुत व्यवस्था की फिक्र नहीं है। तुम्हें बहुत प्राणवान होना है। हां, जितना प्राणवान होने पर भी व्यवस्था चल सके उतना चलाना, उससे ज्यादा नहीं। ध्यान प्राणवान होने पर रखना, व्यवस्था पर नहीं। निश्चित ही संन्यास का जैसे ही हम नाम लेते हैं तो संन्यास के साथ जो हजार बातें जुड़ी रही हैं उन्हें तुम्हारा जोड़ने का मन होगा। उसको जरा सोच-समझकर जोड़ना, क्योंकि मैं तुम्हें निपट कोई मरी-मराई, पुरानी परंपरा से नहीं जोड़ रहा हूं। सच तो यह है कि संन्यास की एक नई ही अवधारणा तुम्हारे साथ जन्म लेती है। तुम्हारे साथ पृथ्वी पर एक नए ही संन्यासी को भेज रहा हूं। आज तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगा, कल दिखाई पड़ेगा, जब हजारों आएंगे उस धारा में तब तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि घटना कितनी बड़ी थी। जो प्राथमिक घटना में सम्मिलित होते हैं, उन्हें बहुत देर में पता चलता है कि घटना कितनी बड़ी थी, यह तो पीछे पता चलता है। तो तुम्हारे ऊपर दायित्व भी बहुत बड़ा है- बोझ का नहीं, दायित्व का। दायित्व यही बड़ा है कि तुम किसी तरह का बोझ मत इकट्ठा कर लेना, नहीं तो पीछे लोग उसे घसीटते चले जाएंगे। संन्यास का मतलब ही यही है मेरी दृष्टि मेंः एक व्यक्ति ने जिंदगी को एक काम समझना बंद किया, खेल समझना शुरू किया- काम नहीं खेल, "वर्क" नहीं "प्ले"। अब तुम्हारे लिए जिंदगी काम नहीं है। अब तुम दफ्तर में भी काम कर रहे हो, तो भी काम नहीं है। अगर तुम चौके में खाना भी बना रहे हो, तो भी काम नहीं है। अगर तुम बुहारी भी लगा रहे हो, तो भी काम नहीं है। तुम संन्यासी हो, तुम्हारे लिए कुछ भी अब काम नहीं है। काम करना नहीं पड़ेगा, काम होगा, लेकिन तुम्हारे लिए अब सब खेल है। तुम्हारा दृष्टिकोण खेल का ही होगा। और खेल में ही बुहारी भी लगाई जा सकती है और खेल में बड़ा काम भी किया जा सकता है, लेकिन तब खेल से पीड़ा नहीं आती। काम छोटे और बड़े होते हैं, खेल सब बराबर होते हैं। यह बड़े मजे की बात है। काम में हायरेरिकी, ऊंच-नीच होती है, कोई काम छोटे का काम है, कोई काम बड़े का काम है। खेल- नॉन-हायरेरिकल, ऊंच-नीच मुक्त है, उसमें कोई हायरेरिकी नहीं है; उसमें कोई नीचा-ऊंचा नहीं है। खेल यानी खेल, चाहे तुम शतरंज खेलो, चाहे तुम ताश खेलो, चाहे तुम गिल्ली-डंडा खेलो, चाहे तुम फुटबॉल खेलो, कुछ भी खेलो, खेल कोई छोटा-बड़ा नहीं है। जैसे ही जिंदगी खेल बनती है, वैसे ही उसमें हायरेरिकी, ऊपर-नीचे का मामला खत्म हो जाता है। तुम्हारे भीतर कोई ऊपर-नीचे नहीं है- किसी भी कारण से नहीं- न कोई ज्ञान में, न उम्र में, न किसी और वजह से। तुम्हारे पीछे भी लोग आएंगे वे भी तुमसे कोई पीछे नहीं होंगे। जो जब भी आए, वह जैसे ही खेल की दुनिया में सम्मिलित हुआ, वैसे ही काम की दुनिया के जो नियम थे वे लागू नहीं होंगे। अभी तक संन्यासी की दुनिया में भी काम के नियम लागू होते थे। वहां भी सीनियारिटी, वरिष्ठता है, जूनियारिटी, कनिष्ठता है। वहां जो एक साल पहले संन्यासी हो जाता है वह सीनियर, वरिष्ठ हो जाता है। जो पीछे आता है उसको नीचे बैठना पड़ता है। सीनियर संन्यासी ऊपर बैठता है। सीनियर संन्यासी के पैर पड़ने हैं। तुम्हारा तो पैर पड़ने का मन हो तो तुम किसी के भी पड़ना। तुम्हें न पड़ने का मन हो तो भगवान भी हो तो मत पड़ना। तुमसे मिलने भी कोई आए और तुम्हें उसके पैर पड़ने का मन हो जाए तो बराबर पड़ना। यह भी मत सोचना कि तुम संन्यासी हो और वह गृहस्थ है। हमें गृहस्थ और संन्यासियों की भी अवधारणाएं तोड़नी हैं। तुमसे कोई मिलने आया है और तुम्हें ऐसा लगे कि पैर पड़ने जैसा लग रहा है, तो बराबर उसके पैरों पर सिर रख देना। तुम्हारा संन्यास उससे सम्मानित होगा। क्योंकि संन्यास की जो मौलिक मनोदशा है वह विनय है, वह विनम्रता है। विनम्रता नियम नहीं मानती, सिर्फ अविनम्रता नियम बनाती है। अविनम्र आदमी कहता है कि ठीक है, आप उम्र में बड़े हैं इसलिए हम पैर छू लेते हैं। जो हमसे उम्र में छोटा है उसके कैसे पैर छू सकते हैं। अविनम्र आदमी कहता है कि अपने से बड़े आदमी के पैर छू लेते हैं और जो छोटी उम्र का है, उससे छुआ लेते हैं। इस तरह बैलेंस संतुलित कर लेते हैं। वह कहता है कि ठीक है, कोई बात नहीं --... चलो, ठीक। छूना भी पड़ता है, इसलिए छुआ भी लेते हैं, तब सब बराबर हो जाता है। तुम्हारे लिए कोई इस जगत में छोटा- बड़ा नहीं है। यदि छोटा बच्चा तुम्हें प्यारा लगे तो उसके पैर छू लेना सड़क पर चलते। उससे तुम्हारे संन्यासी की गरिमा बढ़ेगी, गहरी होगी। और जो

संन्यास अहंकारग्रत्त हुआ है, उसे तोड़ने की भी हमें सुविधा हो जाएगी। उसे तोड़ना। मैंने तुमसे पहले कहा कि उदासी, गंभीरता- अगर ठीक से समझोगे तो- ये सब अहंकार के लक्षण हैं। असल में अहंकारी आदमी खेल नहीं खेल सकता। अगर खेल भी खेलेगा तो खेल को काम बना लेगा। उसमें भी उसको जीतना ही चाहिए। इजिप्त में एक फेरोह नामक सम्राट हुए। वे खेल खेलते थे, लेकिन नियम उसमें यह था कि जीत सदा उसकी ही होनी चाहिए। वह जो उनके साथ खेलता था, उसको हारना सुनिश्चित है। हारना ही है उसे। अगर वह जीत गया तो गर्दन कट जाएगी। क्योंकि वह कोई खेल नहीं है- मामला काम का है, सम्राट जीतना ही चाहिए। गंभीर आदमी खेल भी खेले तो काम बना लेता है। संन्यासी काम भी करे तो उसको खेल बना लेगा। यह संन्यासी और गृहस्थ का फर्क है- काम और खेल का। अहंकार अपने तरह के ढांचे बनाता है। वे ढांचे हम नहीं बनने देंगे। तो तुमसे मैं कहूंगा कि पैर छूना किसी के भी, तुम झुक जाना कहीं भी। सड़क चलते हुए कोई तुम्हें दिखाई पड़ जाए- तुम गए हो नाचने और कोई तुम्हें दिखाई पड़ जाए-तुम्हारा मन हो तो एक क्षण मत रुकना, तुम उसके पैर छूना। तुम कहीं भी झुकना। तुम्हारे लिए सब मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे बराबर हैं। तुम कहीं भी झुकना। तुम्हें सारे लोगों के हृदयों को अनेक-अनेक मार्गों से अपने करीब लाना है। तुम्हारी जिम्मेवारी इतनी बड़ी है जितनी किसी संन्यासी की कभी नहीं थी। क्योंकि कोई संन्यासी था जो महावीर के सामने झुकता था और राम के सामने अकड़ा रहता था। कोई संन्यासी था, जो कृष्ण के सामने झुकता था, बुद्ध के सामने अकड़ा रहता था। कोई बुद्ध के सामने झुकता था तो कृष्ण के सामने अकड़ा रहता था। तुम्हें मैं पहली दफा पृथ्वी पर एक ऐसा संदेश देने को कह रहा हूं, कि सब तुम्हारे हैं, क्योंकि कोई हमारा नहीं है। इसका मतलब ठीक से समझ लेना। सब हमारे तभी हो सकते हैं, जब कोई हमारा नहीं है। अगर कोई भी हमारा है तो फिर सब हमारे नहीं हो सकते हैं। सारे मंदिर, मस्जिद तुमको सौंपता हूं, सब तुम्हारे हैं। तुम सब जगह जाना।
कोई "न" करे तो, मना करे तो?
----तो तुम दरवाजे के बाहर नाचना, कहना आप भीतर नहीं आने देते तो हम बाहर नाचकर चले जाएंगे। हमारा दिल नाचने का हुआ है, तुम जितनी दूर बता दो हम उतनी दूर से नाचकर चले जाएंगे।
मस्जिदवाले भी न नाचने दें तो?
तो उनसे कहना कितनी दूर! आप जितनी दूर बता दें हम उतनी दूर खड़े होकर नाच लें। लेकिन मस्जिद के परमात्मा को भी हम अपना गीत भेंट कर जाएंगे। तुम जितनी दूर कहो, उतनी दूर से, हम वहीं से मस्जिद के परमात्मा को सिर झुकाकर नमस्कार कर लेंगे। तुम्हारे ऊपर बड़ी जिम्मेवारियां मेरे ख्याल में हैं, क्योंकि इन दो वर्ष में मैं दस हजार लोगों को संन्यास की यात्रा पर चला दूंगा। और जो काम कभी नहीं हो सका है, वह हो सकेगा। तो मैं तुम्हें जानकर मंदिर भेजूंगा, मस्जिद भेजूंगा। अगर दस हजार संन्यासी इस मुल्क में मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे के बीच सम्मिलित हो जाएं तो इस मुल्क में दंगे- फसाद खत्म न हो जाएं- इसका कोई कारण नहीं है! असल में जो कहते भी हैं कि सब एक है- कुरान में भी वही है, गीता में भी वही है, वे भी अकड़कर अपने सिंहासन पर बैठे रहते हैं। वे कहते जरूर हैं कि सब एक, लेकिन कुछ होता नहीं उससे। वह हो नहीं सकता है। हमें सब एक करने की कोशिश नहीं करना है, हम अपने एक्ट, कृत्य से जाहिर करेंगे कि सब एक हैं। हमें कोई वक्तव्य नहीं देना है कि सब एक हैं। हमारा कृत्य कहेगा कि सब एक हैं। तुम किसी गांव में जाओ तो मस्जिद में भी ठहर जाना, मंदिर में भी ठहर जाना, जहां तुम्हें मौका मिले ठहर जाना। तुम्हें हिंदू बुलाए तो हिंदू के घर खाना खा लेना, मुसलमान बुलाए तो मुसलमान के घर खाना खा लेना, ईसाई बुलाए तो उसके घर चले जाना। और जल्दी ही मैं चाहूंगा कि नव-संन्यास में मुसलमानों को भी लाना है, ईसाइयों को भी लाना है और सिक्खों को भी लाना है। इस संन्यास के वृक्ष के नीचे सभी धर्मों के लोग आ जाएं, इसकी मैं फिक्र में हूं। तुम जितने विनम्र रहोगे, उतना ही यह सरल हो जाएगा। और इसका तो तुम्हें पता ही नहीं है कि विनम्रता का आनंद कितना है, और अहंकार का दुःख कितना है। क्योंकि हम विनम्र कभी हुए ही नहीं इसलिए उसका हमें पता ही नहीं कि उसका आनंद कितना है! जब तुम उसमें

जिओगे तब तुम्हें पता चलेगा। तुम कल सुबह से ही फिक्र करना कि जहां भी जीवन में विनम्र होने का मौका मिले उसे तुम चूकना ही मत, उसे तुम फौरन ले लेना। झुकने का एक भी अवसर मत खोना, फिर तुम्हारे आनंद की कोई सीमा न रह जाएगी। और तुम्हें इतना सहयोग मिलेगा, और तुम्हें इतने साथी मिल जाएंगे जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। दूसरी बातः धर्म का बहुत गहरा संबंध तर्क से नहीं है, बुद्धि से भी नहीं है। मुझे दिन-रात तर्क और बुद्धि की बात करनी पड़ती है, वह बहुत सिचुएशनल, परिस्थितिगत मजबूरी है। वह मजबूरी मैं तुम्हें कह दूं। वह मजबूरी यह है कि इस युग का जो विचारशील आदमी है, वह ऐसी किसी बात को सुनने को राजी नहीं है, जो तर्क और विचार से प्रमाणित न हो। धर्म, तर्क और विचार से संबंधित नहीं है, इसीलिए इस समय का जो विचारशील आदमी है वह धर्म से टूट रहा है, टूट गया है। जो विचारहीन हैं वे धर्म के साथ रह गए हैं। विचारहीन होने से ऐसा नहीं है कि वह विचार के पार है। उसमें विचार की शक्ति ही नहीं है, वह विचार ही नहीं कर सकता। और धर्म विचार करने से भी आगे की चीज है। तो विचारहीन के साथ धर्म मर रहा है- बच नहीं सकता उसके साथ। हर युग में वही चीज बचती है जो उस युग की बुद्धिमान प्रजा को, उस युग की जो इंटेलिजेंसिया है, उस युग का जो विचार-संपन्न वर्ग है उसकी स्वीकृति में होती है। वही चीज बचती है, दूसरी कोई चीज बचती नहीं है। तो मुझे निरंतर धर्म के लिए अत्यंत विचार और तर्क से बात करनी पड़ रही है, और वह सिर्फ इसलिए करनी पड़ रही है, ताकि एक दफा तर्क और विचार से वह जो इंटेलिजेंसिया, बुद्धिमान वर्ग है वह उत्सुक हो जाए तो उसे निर्विचार में धक्का देना बहुत कठिन नहीं है। उसे हम राजी कर लेंगे, लेकिन वह मुझसे ही राजी हो सकता है। जब उसे इतना भरोसा आ जाए कि जहां तक उसका तर्क जाता है वहां तक तो मैं चलता ही हूं, उसके आगे भी तर्क को ले चलता हूं- जिस दिन उसे यह भरोसा आ जाए कि तर्क में मेरी कोई कमी नहीं है; यानी तर्क में मैं कोई कंजूसी नहीं करता, कोई बचाव नहीं करता, जहां तक वह चलता है उसके दो कदम आगे मैं तर्क में चलता हूं, उसी दिन वह इस ओर झुक सकेगा। फिर भी मैं उससे कहता हूं कि तर्क के आगे कुछ है, तो ही उसको बात ख्याल में आ सकती है। लेकिन ऐसे धर्म का बहुत गहरे में तर्क या विचार से कोई संबंध नहीं है, यही मेरी मजबूरी है। मेरी मजबूरी मैं तुम्हारी मजबूरी नहीं बनाना चाहता। तुमसे मैं कुछ और ही काम लेना चाहता हूं। मेरी मजबूरी तुम अपनी मजबूरी बना भी न पाओगे, उससे तुम अड़चन में पड़ोगे। तुम धर्म को तर्क और विचार की तरफ से पकड़ने की फिक्र ही छोड़ दो। तुम उसे भाव की तरफ से ही पकड़ो। क्योंकि जिनको मैं तर्क और विचार से भाव तक लाऊंगा, उन्हें मैं तुममें डुबाऊंगा। तुमको तर्क और विचार नहीं पकड़ना है। तुम्हें किसी से विवाद में भी नहीं पड़ना है, वह विवाद का काम तुम मेरे ऊपर छोड़ देना। उससे मैं निपट लूंगा, तुम उसमें पड़ना ही मत। उसमें तुम सिर्फ परेशान और पीड़ित हो जाओगे। उसमें तुम सिर्फ उपद्रव में पड़ोगे। तुम तो धर्म को जीना और तुम्हारा जीना ही किसी के लिए आकर्षण बन जाए तो वह उसे खींच लेगा। तुमसे तो कोई तर्क करे तो तुम नाचना, तुमसे कोई विवाद करे तो तुम गीत गाना। अपनी जिंदगी से उत्तर देना तो ही तुम जीत पाओगे, अन्यथा तुम चिंता में पड़ जाओगे और तुम खुद की भी शांति खो दोगे। उनको तो तुम शांत नहीं कर पाओगे, तुम खुद भी अशांत हो जाओगे। तर्क की तो मैं सिर्फ उसी को आज्ञा देता हूं जो तर्क को खेल की तरह कर सके, जो उसमें अशांत न हो। जिस दिन तुममें से कोई भी तर्क ऐसा कर सके जैसे कि वह उसकी मौज है, मजा है, उससे उसे कोई झंझट नहीं है, तभी तुम तर्क में उतरना। यदि तर्क तुम्हारी चिंता बन जाए और विवाद तुम्हें परेशानी में डालने लगे तो मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि तुम तर्क करो। तुम उसमें पड़ना ही नहीं, तुम्हें उसमें पड़ने की जरूरत नहीं है। और ध्यान रहे, दुनिया में धर्म का प्रभाव कम होता है, इसलिए नहीं कि धर्म को तर्क देनेवाले नहीं मिलते, बल्कि इसलिए कि धर्म को जीकर उत्तर देनेवाले नहीं मिलते। वह कम पड़ते चले जाते हैं। तुम्हें एक और दूसरे सेतु का उपयोग करना है। मैं जो कर रहा हूं उससे मैं मुल्क की और मुल्क के बाहर की जो इंटेलिजेंसिया, बुद्धिशाली-वर्ग है उससे तो निकटता बना लूंगा, लेकिन वही सब कुछ नहीं है। उससे भी बड़ा हिस्सा है जगत का, समाज का जिसको बुद्धि से कुछ लेना-देना नहीं है। तुम्हें मैं उसे भी

पकड़ने भेजना चाहता हूं, तुम उसे भी घेर लाना। तो तुम्हारी जो एक स्पष्ट दिशा है, वह यह है कि तुम इतने मौज से जियो और इतने आनंद से जियो कि जो भी करो वह इतना रसपूर्ण हो कि दूसरे के मन में लोभ आ जाए। उसे लगे कि ऐसी भी एक चीज है! तुम उसे मत कहना कि हम तर्क देते हैं, हम तुम्हें समझाते हैं। समझाने का काम ही नहीं है तुम्हारा। तुम तो कहना कि हम ऐसे जीते हैं और मजे से जीते हैं। हम नहीं कहते कि ईश्वर है, हम इतना ही कहते हैं कि हमारा होना एक आनंद है। और उस आनंद में हम किसी को धन्यवाद देना चाहते हैं। हम किसको दें! हम सब जगत को ही धन्यवाद देना चाहते हैं। यह जो हम गीत गा रहे हैं, यह किसी मंदिर में बैठे भगवान के लिए नहीं है, सबमें जो व्याशात है उसके लिए है। उसको हम धन्यवाद दे रहे हैं। तुमसे लोग पूछेंगे कि तुम किस धर्म के हो? तो तुम कहना कि सिर्फ धर्म के हैं, क्योंकि किस धर्म" के लोग बहुत दिन रह चुके, उससे कुछ हुआ नहीं। अब हम एक और प्रयोग करते हैं, हम सिर्फ "धर्म-मात्र" के हो जाते हैं, या सब धर्म हमारे हैं और सब धर्मों के हम हैं। हजार प्रश्न तुमसे लोग पूछेंगे, तुम प्रश्नों के उत्तर सदा सीधे देना। तुम्हारे उत्तर आर्गुमेंट्स, तर्क नहीं होने चाहिए। तुम्हारे उत्तर सिर्फ स्टेटमेंट्स, वक्तव्य होने चाहिए। इसका फर्क समझ लेना। एक तो उत्तर होता है जो दलील होता है। दलील का मतलब होता है कि दूसरा जो कह रहा है वह गलत है और हम उसे सिद्ध करेंगे कि वह गलत है। स्टेटमेंट का मतलब और होता है। वक्तव्य का मतलब होता है कि हमें पता नहीं गलत-सही क्या है, हम जो जी रहे हैं वह यह है, और हम उसमें आनंदित हैं। अगर तुम अपने वक्तव्य में आनंदित हो तो भगवान को धन्यवाद दो और तुम आनंदित रहो। और अगर तुम नहीं हो तो हमारे वक्तव्य में भी आकर देख लो, हम आनंदित हैं। मेरा मतलब समझे न, कि वक्तव्य का मतलब क्या है? वक्तव्य आर्गुमेंट नहीं है, दलील नहीं है। हम यह नहीं कहते कि हम सिद्ध करते हैं। हम इतना ही कहते हैं कि हम मजे में हैं। तुम अगर मजे में हो तो खुशी की बात है। हमें तुम्हारे मजे से जरा भी एतराज नहीं है। तुम अपने मजे में रहो। किसी दिन हमारा मजा खो जाएगा तो हम तुम्हारे मजे में सम्मिलित हो जाएंगे। अगर तुम मजे में नहीं हो तो व्यर्थ दलीलों में मत पड़ो; हमारे मजे में सम्मिलित होकर देखो- तुम्हें भी मिल जाए तो ठीक, अन्यथा हम बुलाते नहीं हैं, बुलाने का कोई कारण नहीं है। इतनी सरलता से ही तुम अगर जाओगे जगत में तो तुम व्यापक काम कर पाओगे। इसका मतलब यह है कि जो मैं बोलता हूं उस चक्कर में बहुत मत पड़ना। वह तुम्हारे लिए है, उसे तुम समझ लेना, लेकिन तुम दूसरे के लिए उसकी फिक्र में मत पड़ना! वह तुम्हारे लिए सिर्फ मानसिक क्लेश बन जाएगा। और तुम्हारा मानसिक क्लेश किसी को भी प्रभावित करनेवाला नहीं है। तुम्हारी मानसिक फ्रुल्लता प्रभावित करेगी। इसका तुम प्रयोग करोगे तो तुम्हें फर्क ख्याल में आ जाएगा फौरन। तुम हंसना, तुम्हारे विरोध में कोई बोले तो ----! और तुम कहना कि आप जो विरोध में बोलते हैं, ठीक ही बोलते होंगे, बाकी हम इतने आनंद में हैं कि हम उस आनंद को किसी तर्क के आधार पर छोड़ने की कोई मर्जी नहीं रखते। उससे बड़ा आनंद तुम हमें बताते हो तो हम चलने को राजी हैं। कोई कहता हो कि ईश्वर नहीं है तो उससे पूछना कि अगर ईश्वर नहीं हो तो हमारा आनंद कैसे बढ़ जाएगा, वह हमें समझा दो तो हम चलने को राजी हैं। कोई कहे कि यह भजन-कीर्तन बेकार है, तो कहना कि हम बिल्कुल बंद करने को राजी हैं, लेकिन जो नहीं कर रहा है वह आनंद में हो तो ----! उससे कहना कि तुम बिना भजन-कीर्तन के यहां खड़े होकर दिखा दो, हम भजन-कीर्तन करके दिखा देते हैं। और जो आनंदित दिखे उसको चुन लेंगे। मेरा मतलब समझ रहे हो न ----! मेरा मतलब कुल इतना है कि तुम एक वक्तव्य बनना- नॉन अरिस्टोटेलियन! नो-आर्गूमेंट, कोई दलीलबाजी न हो उसमें। दलीलबाजी के बड़े खतरे हैं। पहला खतरा तो यह है कि दलीलबाजी सिर्फ उस आदमी को करनी चाहिए जिसे दलील खेल हो- जिसको उससे कहीं कोई अड़चन पैदा नहीं होती हो, जिससे कोई चिंता उसे पैदा नहीं होती हो- किया और गया, जैसे पानी पर एक लकीर होती है। उसे फिर कोई मतलब नहीं है, कोई लेना-देना नहीं है पीछे लौटकर। ऐसे आदमी की दलील ही प्रभावी होती है, इस पर ध्यान रखना। क्योंकि दूसरे आदमी को यह पकड़ जाता है कि वह आदमी सिर्फ दलील नहीं दे रहा है, दलील देने में बहुत आनंदित है, यह उसकी कोई तकलीफ नहीं। और दूसरी बात

यह है कि दलील का अलग मैकेनिज्म है। उसकी अलग व्यवस्था है, उसकी अलग ट्रेनिंग है। वह वर्ष की ट्रेनिंग है, वह एक दिन का काम नहीं है। फ्रुल्ल तो तुम अभी हो सकते हो, तर्कयुक्त तुम्हें होने में वर्ष लग जाएंगे, क्योंकि फ्रुल्लता क्षण में खिल सकती है। इसका फर्क समझ लेना। तुम चाहो तो अव्यवस्थित ढंग से नाच सकते हो, इसमें कोई तुम्हें दुनिया में रोकने को नहीं है, लेकिन अव्यवस्थित ढंग से तर्क करोगे तो बेकार में फंस जाओगे। उसमें तो व्यवस्था चाहिए। और उसकी व्यवस्था का जाल भारी है। मुझे पता है कि उसकी व्यवस्था का जाल कितना लंबा है। उस जाल में अगर मैं तुम्हें डालूं तो तुम्हारी पूरी जिंदगी निकल जाएगी। उससे न तुम किसी को राजी कर पाओगे और न तुम कुछ कर पाओगे। तुम्हें तो मैं तर्क से बिल्कुल ही विमुक्त करता हूं। तर्क-वर्क में तुम पड़ना ही मत। और इससे तुम मेरी जो तर्क की व्यवस्था है उसमें सहयोगी बनोगे, क्योंकि अगर मेरी तर्क की व्यवस्था के पास तुम्हारे नृत्य भी दिखाई पड़ते हों तो मेरा तर्क सिर्फ तर्क नहीं रह जाता। उसके साथ नाच भी हो रहा है। तो इसको ख्याल में रखना। संन्यासियों के लिए काम बहुत हैं, कई तरह के हैं। एक तो जहां भी तुम हो, जल्दी से वहां मित्रों के छोटे-छोटे मंडल बनाने शुरू करो। एक गांव में, एक संन्यासी बहुत कारगर नहीं होता, क्योंकि कुछ चीजें हैं जो सिर्फ समूह में कारगर होती हैं, एक से नहीं होतीं। अगर एक संन्यासी सड़क पर नाचेगा तो पागल मालूम पड़ेगा, और पचास नाचेंगे तो नहीं मालूम पड़ेंगे, क्योंकि जगत संख्या से जीता है। अगर तुम्हें अकेले मैं भेज दूं सड़क पर नाचने, तो तुम पागल मालूम पड़ोगे। लेकिन जब पचास जाते हैं तो फर्क समझते हो क्या होता है! देखनेवाला अकेला होता है, तुम पचास होते हो। देखनेवाला हमेशा अकेला है, क्योंकि दो आदमी इकट्ठे नहीं देख सकते। दो आदमी इकट्ठे नाच सकते हैं। समझे न फर्क! देखनेवाले कितने ही खड़े हों, हजार आदमी खड़े हों, लेकिन हर देखनेवाला अकेला होता है। नाचनेवाले पचास होते हैं। इस पचास से एक की टक्कर होती है तब वह समझता है कि मैं ही पागल हूं। इसीलिए तुम गांव-गांव में, जहां-जहां हो, वहां-वहां ग्रुप को बड़ा करने में लग जाओ। नव-संन्यास में बड़ी सुविधा है। लेकिन पुराना संन्यास जो था वह भारी व्यवस्था में से आता था। कहीं पांच वर्ष की, कहीं दस वर्ष की प्राथमिक सीढ़ियां थीं। अगर दिगंबर जैनियों का संन्यासी होना हो तो पांच सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं। पांच सीढ़ियां पार करने में अंदाजन बीस से चालीस वर्ष लग जाते हैं। यानी अगर दस साल का लड़का संन्यासी हो तो वह साठ साल की अवस्था में जाकर उनकी आखिरी संन्यास की सीढ़ी पर खड़ा हो पाता है। इस पचास साल में उसके भीतर जो भी रागयुक्त है, जो भी संवेदनयुक्त है वह सब मर जाता है, इतनी लंबी है यह ट्रेनिंग। मैंने तो संन्यास को बिल्कुल खेल कर दिया है। तुम अभी ले लो। तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुमने दुबारा सोचा कि नहीं। इसकी भी कोई बात नहीं है। क्योंकि तुम्हें गंभीर मैं बनाना नहीं चाहता हूं। वह तुम्हारा निर्णय है। तुम किसी का कुछ बिगाड़ नहीं रहे हो, बना नहीं रहे हो, वह निपट तुम्हारी निजी बात है। तुम्हारे गैरिक कपड़े पहनने से यह जगत कहीं खिसका नहीं जा रहा है, कुछ हुआ नहीं जा रहा है। फिर मैं कहता हूं, कल तुम्हें लगे तो तुम वापस लौट जाना। कोई जरूरी नहीं है। पुराने संन्यास में इतनी लंबी व्यवस्था इसीलिए थी ताकि वापस न लौटा जा सके। अब सोचें कि जो आदमी एक जगह में पचास साल "एप्रेंटिस", परीक्षार्थी रहा हो- पचास साल, तीस साल, पच्चीस साल जिस आदमी ने सिर्फ प्रवेश का शिक्षण लिया हो वह लौट सकता है? लौटते वक्त उसको लगेगा कि पच्चीस साल सिर्फ शिक्षण है प्रवेश का! जिंदगी तो चली गई उसकी सीढ़ियां चढ़ने में, अब मंदिर में पहुंच पाया, अब मंदिर से लौट कैसे सकता है? पच्चीस साल की जिंदगी जो खोई है उसने, वही मार्ग में खड़ी हो जाती है, अब वह वापस नहीं लौट सकता। असल में इतने लंबे-लंबे संन्यास की जो ट्रेनिंग थी, वह न लौट सके कोई वापस, इसका इंतजाम था। और कुछ मामला नहीं है। संन्यासी तो कोई इसी वक्त हो सकता है। वह तो सिर्फ एक डिसीजन, निर्णय है तुम्हारे मन का, लेकिन इतनी व्यवस्था सिर्फ इसीलिए की थी कि वापस लौटना फिर असंभव हो जाए, फिर कोई उपाय न बचे। नव-संन्यास में तो जो भी राजी होता है, उसे तत्काल संन्यास दे देना है, तुम सब अधिकारी हो। उसको राजी कर लेना, मुझे खबर कर

देना- उससे कहना, जाओ अब तुम यात्रा पर। तुम्हारे ऊपर और कोई बंधन नहीं है सिवाय तुम्हारे अपने विवेक के- उसको बंधन नहीं कहा जा सकता। तुम पर और कोई डिसिप्लिन, नियम नहीं है। तुम्हारे कपड़े, तुम्हारी माला वह कोई डिसिप्लिन नहीं है, वह भी उस खेल का हिस्सा है, जिनमें यूनिफार्म की जरूरत पड़ती है और वे कुछ नहीं हैं। चूंकि उसमें समूह का उपयोग करना है, इसलिए बिना यूनिफार्म के समूह नहीं बनता। अगर तुम पचास आदमी अलग-अलग कपड़ों में सड़क पर खड़े हो तो तुम एक-एक खड़े हो। अगर तुम पचास आदमी एक-से कपड़े पहनकर खड़े हो तो तुम इकट्ठे पचास खड़े हो। तुम्हारे कपड़े तुम्हें इकट्ठा कर देंगे, तुम्हें जोड़ देंगे और समाज के लिए उपयोगी होंगे। और उनसे तुम्हारे लिए सदा स्मरण बना रहेगा। तुम्हें चौबीस घंटे स्मरण रहेगा कि तुम संन्यासी हो। छोटी घटना नहीं है यह। आदमी की पूरी की पूरी व्यवस्था बदल जाती है, बहुत छोटी-सी घटना से- एक दफे उसे रिमेंबरिंग-भर होनी शुरू हो जाए। तुम्हारे कपड़े, माला वे तुम्हारे स्वयं के स्मरण के लिए हैं, और समाज भी तुम्हें स्मरण रखेगा। यह दोनों स्मरण तुम्हारे विवेक को जगाने के लिए प्रेरणा के काम करते रहेंगे। प्रेरणा का काम ही कर सकते हैं, जगाना तो तुम्हें है ही। अब तुम्हें अपने ही विवेक से जीना है। और जिम्मेवारी तुम्हारी बढ़ जाती है, क्योंकि तुम्हें एक बड़ा काम करने का ख्याल अपने में और अपने से बाहर भी तुम्हें पकड़ा है। यह भी ध्यान रखना कि संन्यास आमतौर से अब तक निजी काम था, "सेल्फिश", त्वार्थपूर्ण काम था बहुत, बस अपना ही था। दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं था। मैं जिस संन्यास की दिशा में तुम्हें ले जा रहा हूं वह सिर्फ तुम्हारा अपना काम नहीं है। क्योंकि मेरी अपनी समझ में यह है कि इस जगत में जो भी श्रेष्ठतम फलित होता है वह सदा संबंधों में फलित होता है। तुम भी खिलते हो तो दूसरे के अंतर्संबंधों में खिलते हो। अकेले तुम जरूर भीतर हो, लेकिन अकेले होने का कोई आकार नहीं बनता। आकार तो सब तुम्हारे दूसरों के साथ होने से बनता है। तुम सच बोलते हो, झूठ बोलते हो, अकेले में उसका कुछ अर्थ नहीं है। दूसरों के साथ सब बनना शुरू होता है। ईमानदार हो, बेईमान हो, तुम प्रसन्न हो कि उदास हो, तुम क्या हो? इसकी जो डेफिनेशन, परिभाषा है, इसकी जो सीमा-रेखा है वह दूसरे बनाते हैं, उनसे तुम निर्मित होते हो। यह संन्यास हमारा सिर्फ निजी मामला नहीं है- निजी तो है ही, समूहगत भी है- व्यक्तिगत तो है ही, समष्टिगत भी है। तो तुम अकेले अपनी ही साधना पर निकले हो इतना ही नहीं है। तुम अपने साथ-साथ समाज की साधना पर भी निकले हो, क्योंकि समाज ही तुम्हें पैदा करता है, समाज ही तुम्हें बड़ा करता है, समाज में तुम जीते हो, समाज में तुम मरते हो। तुम भी समाज हो! इसलिए बिल्कुल अकेले होने की बात बिल्कुल बेईमानी है। अपने को बिल्कुल तोड़ा नहीं जा सकता। सब जुड़ा है। इसीलिए अपने विवेक से तुम्हें पूरे वक्त ख्याल रखना है कि तुम कैसे उठते हो, कैसे बैठते हो, क्या करते हो। वह सब तुम्हें ख्याल में रखना है। ख्याल में रखने का मतलब यह नहीं है कि तुम उससे गंभीर हो जाओ और तुम उसे पेटर्नाइज, ढांचाबद्ध कर लो। मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि तुम होटल में बैठकर खाना मत खा लेना, मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि तुम सिनेमा मत चले जाना। नहीं, तुम सिनेमा भी जा सकते हो, तुम होटल में भी खाना खा सकते हो, लेकिन फिर भी संन्यासी होकर तुम होटल में भी और तरह से प्रवेश कर सकते हो। यह बड़ी अलग बात है। होटल में प्रवेश करना उतना कठिन नहीं है, संन्यासी की तरह होटल में प्रवेश करना बिल्कुल दूसरी बात है। तुम सिनेमा में भी जाओ तो भी तुम संन्यासी हो तो तुम संन्यासी की तरह ही सिनेमा में प्रवेश करना। असल में संन्यासी कमजोर था इसलिए वह नहीं गया था। तुम जाना, तुम्हें लगे तो जाना, तुम्हें आनंदपूर्ण हो तो जाना। तुम्हें न लगे तो न जाना, लेकिन जहां भी तुम जाओ वहां तक तुम संन्यासी हो वैसे ही जाना। संन्यासी की तरह" का मतलब है कि तुम साधारण नहीं हो अब, तुम्हारे पास एक विशेष व्यक्तित्व है, तुम्हें चारों तरफ लोग देख रहे हैं। जब तुम साधारण हो तब तुम्हें कोई नहीं देखता।
हम उछलते-कूदते हैं?
उछलने-कूदने में मुझे कोई हर्जा नहीं है, लेकिन संन्यासी की तरह उछलना-कूदना। उछलें, कूदें- मुझे पसंद है। उछलना-कूदना मुझे पसंद है। पर

उसमें भी तुम जानना कि तुम्हें लोग देख रहे हैं। उनके देखने का कोई प्रश्न नहीं है, उनसे कोई भयभीत नहीं होना है। लेकिन जिन लोगों के बीच तुम्हें बड़े काम करने हैं, जिन लोगों के बीच तुम्हें और बहुत कुछ करना है, उनके मन में तुम्हारे प्रति एक आनंद का भाव, एक अहोभाव बनता जाए, पर गंभीरता से नहीं, यह फर्क ख्याल में ले लेना। ऐसा न लगने लगे कि तुम भारी गंभीर हो। ऐसा नहीं है। तुम्हारे प्रति एक अहोभाव बने, कि इतना पुलकित भी व्यक्तित्व है, इतना आनंदित भी। फिर भी एक अनुशासन है उस आनंद में, फिर भी एक व्यवस्था है उस आनंद में। वह तुम्हारा आकर्षण बने। वह लोगों को खींचेगा तुम्हारे पास। फर्क ख्याल में ले लेना। पुराना संन्यासी भी ख्याल रखता था कि लोग देख रहे हैं, लेकिन इसलिए कि लोग उसका आदर करें। यह मैं तुमसे नहीं कह रहा कि लोग तुम्हारा आदर करें। लोग तो तुम्हारा आदर करें, न करें, यह सवाल नहीं है बड़ा। नहीं, लोग तुम्हें देखकर आनंदित हों। इन दोनों में बड़ा फर्क है। ध्यान रखना कि आदर हम उसका करते हैं जिसे देखकर हम आनंदित नहीं होते, बल्कि थोड़े बेचैन हो जाते हैं। इसलिए आदर करनेवाला आदमी चौबीस घंटे कमरे में रहे तो हम कहेंगे- अब बस बहुत हो गया। इस कमरे में हम नहीं घुस सकते। क्योंकि आदर जिसका हमें करना है उसके साथ थोड़ी-बहुत देर चल सकता है। घड़ी, आधा घड़ी हम आदर की व्यवस्था में रह सकते हैं, फिर उसके बाद वह घबरानेवाला हो जाता है। लेकिन जिसके साथ हम आनंदित होते हैं, उसके साथ हम चौबीस घंटे रह सकते हैं। उसका साथ कभी घबरानेवाला नहीं होता। तो तुम्हें आदर मिले, यह तुम्हें ध्यान में नहीं लेना है। यह तो अहंकार है, इससे कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन तुम कहीं से भी निकलो तो खुशी की एक लहर लोगों के मन में छोड़ देना। बस इतना तुम्हारा काम है।
तुम्हें कुछ पूछना हो तो पूछ लो! संन्यास लेने में घरवालों से बगावत
हो जाती है। इस व्यवहार को क्या आप न्यायसंगत मानते हैं? और यदि परिवार के सदस्यों को हमारे संन्यास से बहुत तकलीफ होवे तो संन्यास छोड़ देना क्या उचित होगा?
दो बातें ख्याल में ले लेना चाहिए। एक तो यह कि जहां तक बने कोई दुःखी
न हो इसका ख्याल रखना चाहिए। तुम अपनी सारी कोशिश कर लेना कि घर में रहकर, बिना किसी को दुःखी किए, तुम्हारा संन्यास फलित हो पाए, लेकिन किसी के दुःखी होने के लिए अगर कोई उपाय ही न बचे तो इसके लिए संन्यास नहीं छोड़ा जा सकता, क्योंकि तब तुम खुद दुःखी होओगे। अगर तुम्हें ऐसा लगे कि संन्यास छोड़ने से मैं इतना दुःखी नहीं होता, जितना संन्यास लेने से घर के लोग दुःखी होते हैं तब मैं दुःखी होता हूं, तब तुम मत लेना। लेकिन घर के लोगों के दुःखी होने से जितना मैं दुःखी होऊंगा उससे ज्यादा दुःखी संन्यास के छोड़ने से हो जाऊंगा, तो मैं तुमसे कहूंगा कि संन्यास ले लो। क्योंकि इस जगत में एब्सोल्यूट, परम चुनाव नहीं हैं- रिलेटिव, सापेक्ष चुनाव हैं। दूसरों के दुःख का ध्यान रखना, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि अपने दुःख का ध्यान ही मत रखना, क्योंकि तुम भी हो! कोई दूसरे ने ठेका नहीं ले लिया है दुःखी होने का। ध्यान रखना बिल्कुल जरूरी है कि जहां तक बन सके वे सुखी हों इस भांति। अगर ऐसा लगे कि असंभव है, वे सुखी हो नहीं सकते, और तुमने अपनी सारी कोशिश कर ली, कोई उपाय नहीं है, अब तो उन्हें दुःखी ही रहना पड़ेगा, तो मैं कहूंगा तुम संन्यास ले लो। लेकिन, तुमने अगर सारी कोशिश कर ली है तो घर के लोग ज्यादा देर दुःखी नहीं रहेंगे। क्योंकि उन्हें यह भी तो दिखाई पड़ेगा कि तुमने सब कोशिश की है। और संन्यास लेने के बाद भी तुम कुछ उनके दुश्मन मत हो जाना, भले ही वे तुम्हारे दुश्मन हो जाएं। तुम आना- जाना जारी रखना, तुम्हारा सब संबंध जैसा था वैसा जारी रखना। तुम उनसे कहते रहना कि आप नहीं रहने दे रहे हो इसलिए हम घर में नहीं रह रहे हैं, हम तो रहने को राजी हैं। और हममें कहीं भी कोई फर्क नहीं हुआ है। कहीं भी कोई फर्क हुआ है तो वह हमको बताएं। हम वैसे ही रहेंगे जैसे कल तक थे। लेकिन अगर हमारे संन्यास से हममें फर्क नहीं हुआ, आप में फर्क हो गया और आप हमारा रहना बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं तो आपको दुःख न दें इसलिए हम बाहर जा रहे हैं। लड़ाई अपनी तरफ से नहीं लेना। अपनी तरफ से सदा ही मैत्री रखना। उनकी लड़ाई थोड़े दिन में मर जाएगी, क्योंकि कोई भी लड़ाई एक तरफ ज्यादा दिन नहीं

चलती। फिर, वे तुम्हें प्रेम करते हैं इसलिए चिंतातुर हैं। उनकी चिंता एकदम गलत नहीं है। और संन्यास के नाम से वे जो समझते हैं, वह कुछ और है। जब वे तुम्हें देखेंगे कि वैसा संन्यास नहीं है, कुछ और ही बात है तो वे पिघल जाएंगे। वे तुम्हें प्रेम करते हैं इसलिए विरोध में हैं। लेकिन जब देखेंगे कि कोई नुकसान ही नहीं हुआ है- जिस नुकसान के डर से वे विरोध में हैं तो विरोध गिर जाएगा। उसकी चिंता लेने की जरूरत नहीं है, संन्यास घर में ही रहकर लेना, न बन सके तो ही आश्रम में जाना। और फिर भी घरवाले कल वापस बुलाएं कि बनता है, तुम आ जाओ संन्यासी रहते, तो तुम घर आ जाना। उसमें कोई अड़चन नहीं है। थोड़ा विरोध आएगा, स्वाभाविक है, लेकिन दो वर्ष का है। जब हजारों लोग होंगे तो विरोध गिरता जाएगा। अभी आनंदमूर्ति के पिता मुझसे क्षमा मांग गए हैं। शुरू में बहुत विरोध आया था। कपड़े छीन लिए थे। सब किया, सब तरह से दबाया। अभी माफी मुझसे मांग गए हैं कि माफ कर देना, आपके लिए कुछ गलत बातें कह दीं गुस्से में, वह भूल हो गई है। और किसी के लिए भी कही हों तो उन सबसे भी मैं माफी मांगता हूं। कितनी देर लगेगी! अगर तुम ठीक हो तो कितनी देर लगेगी, स्थिति के सुलझने में। उसका भरोसा रखना।
संन्यासियों के लिए कोई अलग शिविर आप लेनेवाले हैं और उनका कोई प्रशिक्षण भी आप करनेवाले हैं?
जल्दी ही सब संन्यासियों के लिए एक अलग शिविर रखने का ख्याल है। एक तो
वह करना ही है और अभी तुम वहां आजोल में जो संन्यासी हैं वे, और बाहर जो संन्यासी हैं वे, सात-आठ दिन का एक शिविर तो अभी तुम ही पहले आजोल के विश्वनीड़ आश्रम में ले लो। वह शिविर तो तुम्हारे नृत्य, तुम्हारे गीत- इस सबके अभ्यास के लिए हो, उसमें मेरी उपस्थिति जरूरी नहीं है। वह तुम्हें ले लेना है। ताकि एक सात दिन के शिविर में तुम्हारी थोड़ी-सी समझ बढ़ जाए। व्यवस्था में बांध नहीं लेना अपने को, लेकिन एक व्यवस्था का तुम्हें बोध हो जाए। फिर तो मेरा आगे से ख्याल यह है कि जहां-जहां भी मेरी मीटिंग, प्रवचनमाला होगी- और अब सब जगह मेरा ख्याल यह हो गया है कि नौ दिन से कम मीटिंग कहीं भी लेना नहीं है ----तो अभी एक वर्ष तो गीता ही पूरा करने में लगेगा- वहां-वहां संन्यासी मेरे पहुंचने के तीन दिन पहले पहुंच जाएंगे और पूरे गांव में अपना संदेश गुंजा देंगे। और मेरे लौटने के तीन दिन बाद तक वे रुकेंगे। तीन दिन फिर गांव में धुन लगा देनी है। साहित्य भी पहुंचा देना हैं, धुन भी पहुंचा देनी है, मैं नौ दिन रहूंगा, तुम पंद्रह-सोलह दिन रहना। और अब तुम्हें गांव-गांव भेजना शुरू करूंगा। कभी पूरी मंडली एक चक्कर लगा आएगी, साहित्य दे आएगी, समझा भी आएगी। और यह ख्याल रखो कि हमारे मुल्क का जो मानस है, उसका पूरा उपयोग करना है। जो बीज हमें बोने हैं उसमें मुल्क की भूमि का पूरा उपयोग करना है। गांव में कृष्ण से प्रेम है तो वहां कृष्ण के गीत गाओ, गांव मुसलमानों का है तो सूफियों के गीत गाओ। वह सब सीखना पड़ेगा जो कि बहुत आनंदपूर्ण होगा। गांव ईसाइयों का है, तो कोई बात नहीं, जीसस के गीत गाओ। यह सब तैयारी तुम्हें करनी है। जैन, हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख कम-से-कम इन पांच धर्मों को तो फिलहाल समेट लेना है, बाद में अन्य धर्मों का भी ख्याल ले लेंगे। इन सबके दो-दो, चार-चार गीत भी तैयार कर लेने हैं। फिर तो मैं अनेक लोगों को तुम्हारे पास भेजूंगा- कोई सूफी भेजूंगा, वह तुम्हें दरवेश नृत्य सिखा जाएगा-! और जो भी सीखने-जैसा मिल जाए वह सीखना। जल्दी ही सब कित्म के संन्यासी-साधु आ जाएंगे। कोई नाच, कोई गाना, कोई नाटक- वे सब तुम्हें सिखाएंगे।
सामाजिक अन्याय व शोषण से लड़ने के लिए नव-संन्यासी क्या करेगा?
अभी तुम समाज के अन्याय की फिक्र छोड़ दो। अभी तो तुम समाज में धर्म
को पहुंचाने की फिक्र करो, वही समाज के अन्याय को तोड़ने का पॉजिटिव, विधायक उपाय है। अन्याय इसीलिए है न, क्योंकि धर्म का अभाव है। धर्म को तुम पहुंचाने की फिक्र करो। अभी तुम अन्याय की फिक्र छोड़ो। वह आगे की बात है। जब तुम्हारे पास एक बड़ा वर्ग होगा, तब हम तोड़ सकेंगे वह सब भी। अन्याय के खिलाफ भी किसी दिन तुम्हें लड़ाया जा सकता है, लेकिन उसकी ताकत इकट्ठी होनी चाहिए तभी वह हो सकता है। लड़ाया जा सकता है बराबर। इसमें कोई अड़चन नहीं है। अब समझो जैसे कि किसी गांव ने शूद्रों को जलाकर मार डाला है, तो

जिस दिन हमारे पास दस हजार संन्यासी होंगे तो हम उन्हें लेकर उस पूरे गांव पर हमला ही बोल देंगे। पर यह सब बात तुम्हारे पास शक्ति हो जाए उसके बाद सोचने की है। और तब हम अन्याय नहीं होने देंगे। पर अभी तो कुछ नहीं कर सकते हैं हम। नहीं कर सकने की हालत में कुछ करने से व्यर्थ ही ताकत व्यय होती है, उसमें कुछ लेना-देना नहीं होता है। तो अभी तो शक्ति को बढ़ाओ। अभी तो सब कुछ पॉजिटिव, विधायक रखो। अभी निगेटिव, निषेधात्मक कुछ भी नहीं करना है। इन सबकी अभी कोई चिंता नहीं लेनी है। वह है, दुःखद है। लेकिन जब तक हम शक्ति इकट्ठी नहीं कर लेते तब तक उससे लड़ना नहीं है।
संन्यासी क्या विवाह कर सकता है?
बिल्कुल कर सकता है। क्योंकि संन्यास को इतनी बड़ी बात मानता हूं मैं
कि विवाह, लग्न आदि बिल्कुल छोटी बातें हैं। यह ऐसा ही है जैसे कि कोई आदमी पूछे कि संन्यास के बाद मैं दातुन कर सकता हूं क्या? नहीं, उसका कोई मूल्य नहीं है इतना। उसको इतना महत्वपूर्ण, सिग्निफिकेंट बना लिया है हमने, इसलिए हमको ऐसा लगता है। दातुन की बात पर हमको हंसी आती है, लेकिन जैन साधु-साध्वियों के लिए दातुन करना भी एक बड़ी समस्या है। जैन संन्यासी दातुन नहीं कर सकता है, नहा भी नहीं सकता है। तो जैन संन्यासी पूछता है कि संन्यास के बाद क्या नहा सकते हैं हम? बस इतना ही मामला है। प्रोटेस्टेंट फकीर शादी करता है तो वहां इस संबंध में कोई प्रश्न खड़ा नहीं होता, कैथोलिक फकीर यह प्रश्न पूछता है क्योंकि शादी करने की सख्त मनाही है। यह संन्यासी की अपनी बात है। यदि उसे लगता है कि शादी से उसके मन में परमात्मा के प्रति ज्यादा अहोभाव व धन्यवाद देने की सुविधा का जन्म होता है, तो कर ले। और अगर शादी सिर्फ कलह और उपद्रव बनती हो, तो न करे। यह उसकी निजी बात है। इससे हमें कुछ लेना-देना नहीं है। हमें कोई बाधा नहीं है। हम सब उसकी शादी में आनंद से नाचेंगे। यानी उसका मतलब यह हुआ कि उस संन्यासी के जीवन में एक नया डायमेंशन, आयाम और बढ़ गया- "शादी-शुदा संन्यासी"- इससे संन्यासी में कुछ फर्क नहीं पड़ता है। हम कोई बाधा ही नहीं डालना चाहते। हम संन्यास को इतना परम, अल्टिमेट समझते हैं कि उसमें कोई भी क्षुद्र बात को बीच में बाधा मानना संन्यास को बहुत नीचे उतारना है। ये सब इतनी छोटी बातें हैं। कि इनकी फिक्र ही करने की जरूरत नहीं है। हम फिक्र नहीं करेंगे इसकी। शुरू में कठिन पड़ेगा क्योंकि हमारे मुल्क में लंबे समय से इस संबंध में एक धारणा बनी हुई है। लेकिन धीरे-धीरे सब टूट जाएगा।
संन्यासी विभिन्न धर्मों का अध्ययन कर सकता है? और संन्यासी आश्रम
में किस ढंग से रहेगा?
बिल्कुल कर सकता है। लेकिन, वह अपनी-अपनी रुचि की बात है। लेकिन ध्यान सबको करना है। क्योंकि किसी भी तरह का आदमी हो उसे ध्यान जरूरी है, बाकी सब रुचि की बात है। किसी संन्यासी को अध्ययन रुचिकर हो तो वह अध्ययन करे, किसी को बागवानी रुचिकर हो तो वह बागवानी करे आश्रम में, किसी को हारमोनियम बजाना रुचिकर हो तो वह हारमोनियम बजाना सीखे। वह जो निजी समय बचता है संन्यासी के पास, उसके उपयोग का चुनाव संन्यासी पर छोड़ देना है। प्रत्येक संन्यासी आश्रम में कम-से-कम चार घंटे उत्पादक-श्रम करेगा। वह निजी बात नहीं है। वह आश्रम के लिए है। वह जो कर सकता है, वह करेगा। लेकिन, कोई-न-कोई काम हम उससे लेंगे ही। वह चाहे खेती करे, चाहे बागवानी करे, चाहे स्कूल में पढ़ाए, चाहे अस्पताल में सेवा करे। चार घंटे कम-से-कम वह ऐसा काम करे, जिससे उसकी रोजी-रोटी, कपड़ा व रहने की व्यवस्था आदि का खर्च निकलता हो, ताकि हम किसी के सामने रुपए के लिए हाथ जोड़कर कभी खड़े न हों। अगर कोई देने भी आश्रम को कुछ आए तो हाथ जोड़कर ही आए। लेकिन हम उससे लेने नहीं जाएंगे। क्योंकि जो आश्रम समाज पर निर्भर होता है वह बदतर हो जाता है। क्योंकि जो एक भी पैसा देता है- और जब हम पैसा मांगने की हालत में होते हैं, तो वह सशर्त ही देता है, उसमें शर्त होती है, चाहे कोई कहे या न कहे। तो हम कोई सशर्त पैसे नहीं लेंगे। हम मेहनत कर लेंगे। और तभी हमारा प्रभाव व्यापक हो सकता है। तो धीरे-धीरे वहां आश्रमों में हम सब जमाएंगे, इंडस्ट्री इत्यादि। चार घंटे आश्रम में प्रत्येक को उत्पादक श्रम करना ही चाहिए। और जब हमें ही लगे कि अमुक संन्यासी से चार घंटे खेत में काम

करवाना उचित नहीं है, क्योंकि अगर चार घंटे साहित्य-निर्माण के काम में लगाए तो ज्यादा काम होता है तो उसे हम खेत के काम से रोकेंगे। इसका ख्याल कम्यून रखेगा। अगर उसका चार घंटे पढ़ना आश्रम के लिए ज्यादा उपयोगी हो, तो वह पढ़े। बाकी जो समय बचता है उसका प्रत्येक संन्यासी अपने निजी ढंग से उपयोग कर सकता है। वह उसकी मौज व रुचि पर छोड़ दिया जाएगा। और धीरे-धीरे अनेक तरह की रुचियों के लोग आएंगे। और विभिन्न रुचियां हों तो फायदा होगा। क्योंकि वे आपस में उपयोगी होंगे- कोई पढ़ेगा, कोई लिखेगा, कोई एडिट, संपादन करेगा, कोई गीत गाएगा, कोई संगीत बजाएगा- उन सबकी तुम्हें जरूरत पड़ेगी। कोई नाटक में रुचि रखता है तो नाटक बनाएगा, ड्रामा तैयार करेगा, कोई अभिनय में रुचि रखता है तो उसकी तैयारी करेगा। जैसे-जैसे तुम्हारा काम बड़ा होता है और मैं किसी गांव में जाता हूं तो मैं चाहूंगा कि कोई दो सौ संन्यासी उस गांव में उतार दिए जाएं- वे वहां ड्रामा भी करेंगे, नृत्य भी करेंगे, वे समझाएंगे भी, वे कॉलेजों में भी जाएंगे, वे सड़कों पर नाचेंगे भी- वे पूरे गांव को सब तरफ से घेर लेंगे। वे पंद्रह दिन उस गांव में रह जाएंगे तो उस गांव के प्राणों में सब कोनों से घुस जाएंगे। यानी उस गांव में किसी भी रुचि का आदमी अछूता बच नहीं सकेगा- गांव में अनेक रुचियों के लोग होते हैं। किसी को गीता में रुचि है, किसी को है ही नहीं रुचि। उसे भजन में रुचि है तो वह भजन में आ जाए। यदि किसी को न गीता में रुचि हो, न भजन में रुचि हो, लेकिन नाटक में रुचि हो तो वह नाटक देखने आ जाए। अनेक तरह के कार्यक्रम संन्यासी देंगे, तो उन सबकी तैयारी करनी पड़ेगी। संन्यासियों को सक्रिय ध्यान के अतिरिक्त ध्यान की गहराई के लिए कोई भिन्न प्रक्रिया करनी जरूरी है? हां करनी है। धीरे-धीरे सब संन्यासियों को इक्कीस दिन के पूर्ण मौन व एकांत के गहरे ध्यान का प्रयोग कर लेना चाहिए। ध्यान का कोई भी एक विशेष प्रयोग लगातार तीन महीने तक करना चाहिए तो ही गहरा लाभ शीघ्र हो सकेगा।

नव-संन्यास क्या?
छठवां प्रवचन

संन्यास का एक नया अभियान

प्रश्न- दो-तीन दिनों से अनेकानेक श्रोतागण आपके आस-पास दिखाई पड़ने वाले नव-संन्यास और नव-संन्यासियों के संबंध में कुछ बातें आपके स्वयं के मुख से ही सुनना चाहते हैं। कृपया इस संबंध में कुछ कहें।

संन्यास का एक नया अभियान जो भी मैं कह रहा हूं, संन्यास के संबंध में
ही कह रहा हूं। यह सारी गीता संन्यास का ही विवरण है। और जिस संन्यास की मैं बात कर रहा हूं, वह वही संन्यास है जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं- करते हुए अकर्ता हो जाना, करते हुए भी ऐसे हो जाना जैसे मैं करनेवाला नहीं हूं। बस संन्यास का यही लक्षण है। गृहस्थ का क्या लक्षण है? गृहस्थ का लक्षण है, हर चीज में कर्त्ता हो जाना। संन्यासी का लक्षण है, हर चीज में अकर्त्ता हो जाना। संन्यास जीवन को देखने का और ही ढंग है। बस ढंग का फर्क है। संन्यासी और गृहस्थ में घर का फर्क नहीं है, ढंग का फर्क है। संन्यासी और गृहस्थ में जगह का फर्क नहीं है, भाव का फर्क है। संन्यासी और गृहस्थ में परिस्थिति का फर्क नहीं है, मनः स्थिति का फर्क है। संसार में जो है --... हम सभी संसार में ही होंगे। कोई कहीं हो- जंगल में बैठे, पहाड़ पर बैठे, गिरि-कंदराओं में बैठे, संसार के बाहर जाने का उपाय नहीं है- परिस्थिति बदलकर नहीं है! संसार से बाहर जाने का उपाय है मनः स्थिति बदलकर, बाई द म्यूटेशन आकृफ द माइंड, मन को ही रूपांतरित करके। मैं जिसे संन्यास कह रहा हूं वह मन को रूपांतरित करने की एक प्रक्रिया है। दो-तीन उसके अंग हैं, उनकी आपसे बात कर दूं। पहला तो, जो जहां है, वहां से हटे नहीं। क्योंकि हटते केवल कमजोर हैं। भागते केवल वे ही हैं जो भयभीत हैं। और जो संसार को ही झेलने में भयभीत है, वह परमात्मा को नहीं झेल सकेगा, यह मैं आपसे कह देता हूं, जो संसार का ही सामना करने में डर रहा है वह परमात्मा का सामना कर पाएगा? नहीं कर पाएगा, यह मैं आपसे कह देता हूं। संसार जैसी कमजोर चीज जिसे डरा देती है, परमात्मा जैसा विराट जब सामने आएगा तो उसकी आंखें ही झप जाएंगी, वह ऐसा भागेगा कि फिर लौटकर देखेगा भी नहीं। यह क्षुद्र-सा चारों तरफ जो है, यह डरा देता है तो उस विराट के सामने खड़े होने की क्षमता नहीं होगी। और फिर अगर परमात्मा यही चाहता है कि लोग सब छोड़कर भाग जाएं तो उसे सबको सब में भेजने की जरूरत ही नहीं रह जाती। नहीं, उसकी मर्जी और मंशा कुछ और है। मर्जी और मंशा यही है कि पहले लोग क्षुद्र को, आत्माएं क्षुद्र को सहने में समर्थ हो जाएं, ताकि विराट को सह सकें। संसार सिर्फ एक प्रशिक्षण है, एक ट्रेनिंग है। इसलिए जो ट्रेनिंग को छोड़कर भागता है उस भगोड़े को, एस्केपिस्ट को मैं संन्यासी नहीं कहता हूं। जीवन जहां है, वहीं है। संन्यासी हो गए, फिर तो भागना ही नहीं। पहले चाहे भाग भी जाते तो मैं माफ कर देता। संन्यासी हो गए फिर तो भागना ही नहीं, फिर तो वहीं जमकर खड़े हो जाना है। क्योंकि फिर अगर संन्यास संसार के सामने भागता हो तो कौन कमजोर है, कौन सबल है? फिर तो मैं कहता हूं कि अगर संन्यास इतना कमजोर है कि भागना पड़ता है तो फिर संसार ही ठीक है। फिर सबल को ही स्वीकार करना उचित है। तो पहली तो बात मेरे संन्यास की है कि भागना मत! जहां खड़े हैं जिंदगी की सघनता में पैर जमाकर ----लेकिन उसे प्रशिक्षण बना लेना। उस सबसे सीखना, उस सबसे जागना, उस सबको अवसर बना लेना। पत्नी होगी पास, भागना मत! क्योंकि पत्नी से भागकर कोई स्त्री से नहीं भाग सकता। पत्नी से भागना तो बहुत आसान है। पत्नी से तो वैसे ही भागने का मन पैदा हो जाता है, पति से भागने का मन पैदा हो जाता है। जिसके पास हम होते हैं उससे ऊब जाते हैं। नए की तलाश मन करता है। पत्नी से भागना बहुत आसान है। भाग जाएं, फिर भी स्त्री से न भाग पाएंगे। और जब पत्नी-जैसी स्त्री को निकट पाकर स्त्री से मुक्त न हो सके तो फिर कब मुक्त हो सकेंगे? अगर पति जैसे प्रीतिकर मित्र को निकट पाकर पुरुष की कामना से मुक्ति न मिली तो फिर छोड़कर कभी न मिल सकेगी। इस देश ने

पति और पत्नी को सिर्फ "काम" का उपकरण नहीं समझा, सेक्स वासना का साधन नहीं समझा है। इस मुल्क की गहरी समझ आज भी कुछ और है, और वह यह है कि पति-पत्नी प्रारंभ करें वासना से और अंत हो जाएं निर्वासना पर। इसमें वे एक-दूसरे के सहयोगी बनें। स्त्री सहयोगी बने पुरुष की, कि पुरुष स्त्री से मुक्त हो जाए। पुरुष सहयोगी बने पत्नी का, कि पत्नी पुरुष की कामना से मुक्त हो जाए। यह अगर सहयोगी बन जाएं तो बहुत शीघ्र निर्वासना को उपलब्ध हो सकते हैं। लेकिन ये इसमें सहयोगी नहीं बनते। पत्नी डरती है कि कहीं पुरुष निर्वासना को उपलब्ध न हो जाए। वह डरी रहती है। अगर पति मंदिर जाता है तो वह ज्यादा चौंकती है; सिनेमा जाता है, तो विश्राम करती है। पति चोर हो जाए समझ में आता है- प्रार्थना, भजन-कीर्तन करने लगे तो समझ में बिल्कुल नहीं आता है- खतरा है! पति भी डरता है कि पत्नी कहीं निर्वासना में न चली जाए। अजीब है हालत। हम एक-दूसरे का शोषण कर रहे हैं इसलिए इतने भयभीत हैं। हम एक-दूसरे के मित्र नहीं हैं। क्योंकि मित्र तो वही है जो वासना के बाहर ले जाए। क्योंकि वासना दुःख है, और वासना दुष्पूर है। वासना कभी भरेगी नहीं। वासना में हम ही मिट जाएंगे, वासना नहीं मिटेगी। तो मित्र तो वही है, पति तो वही है, पत्नी तो वही है, जो वासना से मुक्त करने में साथी बने। और तब शीघ्रता से यह हो सकता है। इसलिए मैं कहता हूं पत्नी को मत छोड़ो, पति को मत छोड़ो, किसी को मत छोड़ो- इस प्रशिक्षण का उपयोग करो। हां, इसका उपयोग करो परमात्मा तक पहुंचने के लिए, संसार को बनाओ सीढ़ी। संसार को दुश्मन मत बनाओ, बनाओ सीढ़ी। चढ़ो उस पर, उठो उससे। उससे ही उठकर परमात्मा को छुओ। और संसार सीढ़ी बनने के लिए है। इसलिए यह पहली बात! दूसरी बातः संन्यास अब तक सांप्रदायिक रहा है जो कि दुःखद है, जो कि संन्यास को गंदा कर जाता है। संन्यास धर्म है, संप्रदाय नहीं। गृहस्थ संप्रदायों में बंटा हो, समझ में आता है। उसके कारण हैं। जिसकी दृष्टि बहुत सीमित है, वह जो विराट है उसे पकड़ नहीं पाता है। वह हर चीजों में सीमा बनाता है, हर चीज को खंडों में बांट लेता है तभी पकड़ पाता है। आदमी-आदमी की सीमाएं हैं। अगर आप बीस आदमी पिकनिक को जाएं तो आप पाएंगे कि पिकनिक पर आप पहुंचे कि चार-पांच ग्रुप में टूट जाएंगे। बीस आदमी इकट्ठे नहीं रहेंगे। तीन-तीन, चार-चार की टुकड़ी हो जाएगी। सीमा है- तीन-तीन, चार-चार में टूट जाएंगे, अपनी-अपनी बातचीत शुरू कर देंगे। दो-चार हिस्से बन जाएंगे। बीस आदमी इकट्ठे नहीं हो पाते हैं, ऐसी आदमी की सीमा है। सारी मनुष्यता एक है, यह साधारण आदमी की सीमा के बाहर है सोचना। सब मंदिर, सब मस्जिद उसी परमात्मा के हैं, यह सोचना मुश्किल है। साधारण की सीमा के लिए कठिन होगा लेकिन संन्यासी असाधारण होने की घोषणा है। तीसरी बातः संन्यास धर्म में प्रवेश है- हिंदू-धर्म में नहीं, मुसलमान- धर्म में नहीं, ईसाई-धर्म में नहीं, जैन-धर्म में नहीं- धर्म में। इसका क्या मतलब हुआ? हिंदू-धर्म के खिलाफ- नहीं! इस्लाम-धर्म के खिलाफ- नहीं! जैन-धर्म के खिलाफ- नहीं! वह जो जैन-धर्म में धर्म है उसके पक्ष में और जो जैन है उसके खिलाफ। और वह जो हिंदू-धर्म में धर्म है उसके पक्ष में, और वह जो हिंदू है उसके खिलाफ। और वह जो इस्लाम-धर्म में धर्म है उसके पक्ष में और वह जो इस्लाम है उसके खिलाफ- सीमाओं के खिलाफ और असीम के पक्ष में! आकार के खिलाफ और निराकार के पक्ष में! संन्यासी किसी धर्म का नहीं, सिर्फ धर्म का है। वह मस्जिद में ठहरे, मंदिर में ठहरे, कुरान पढ़े, गीता पढ़े, महावीर, बुद्ध, लाओत्से, नानक जिससे उसका प्रेम हो, उससे प्रेम करे। लेकिन जाने कि जिससे वह प्रेम कर रहा है यह दूसरों के खिलाफ घृणा का कारण नहीं, बल्कि यह प्रेम ही उसकी सीढ़ी बनेगी उस अनंत में छलांग लगाने के लिए, जिसमें सब एक हो जाता है। नानक को बनाएं सीढ़ी; बुद्ध, मुहम्मद को बनाना चाहें, बुद्ध-मुहम्मद को बनाएं! कूद जाएं वहीं से, पर कूदना है अनंत में! और इस अंनत का स्मरण रहे तो इस पृथ्वी पर दो घटनाएं घट सकती हैं। संन्यासी जहां है वहीं रहे तो करोड़ों संन्यासी सारी पृथ्वी पर हो सकते हैं। संन्यासी छोड़कर भागे तो ध्यान रखना भविष्य में बीस साल, पच्चीस साल के बाद, इस सदी के पूरे होते-होते संन्यास अपराध होगा, क्रिमिनल एक्ट हो जाएगा। रूस में हो गया, चीन में हो गया, आधी दुनिया में हो गया। आज रूस और चीन में कोई संन्यासी होकर नहीं रह सकता। क्योंकि वे कहते हैं, जो करेगा

मेहनत वह खाएगा। जो मेहनत नहीं करेगा वह शोषक है, एक्सप्लायटर है, उसको हटाओ, वह अपराधी है। वहां संन्यास बिखर गया। चीन में बड़ी गहरी परंपरा थी संन्यास की, वह बिखर गयी, टूट गयी, मॉनेस्ट्रीज उखड़ गयीं। तिब्बत गया ---- शायद पृथ्वी पर सबसे ज्यादा गहरे संन्यास के प्रयोग तिब्बत ने किए हैं, लेकिन सब मिट्टी हो गया! हिंदुस्तान में भी ज्यादा देर नहीं लगेगी। लेनिन ने कहा था उन्नीस सौ बीस में कि कम्युनिज्म का रास्ता मास्को से पेकिंग और पेकिंग से कलकत्ता होता हुआ लंदन जाएगा। कलकत्ते तक पदचाप सुनायी पड़ने लगे हैं। लेनिन की भविष्यवाणी सही होने का डर है। संन्यास अब तो एक तरह से बच सकता है कि संन्यासी स्व-निर्भर हो- समाज पर, किसी पर निर्भर होकर न जिए। तभी हो सकता है स्व-निर्भर जब वह संसार में हो- भागे न! अन्यथा संन्यासी संसार से भागकर स्व-निर्भर कैसे हो सकता है? थाइलैंड में चार करोड़ की आबादी है, बीस लाख संन्यासी हैं वहां। मुल्क घबरा गया, लोग परेशान हो गए। बीस लाख लोगों को चार करोड़ की आबादी कैसे खिलाए, कैसे पिलाए, क्या करे! अदालतें विचार करती हैं वहां, कानून बनाने का संसद निर्णय लेती है कि कोई सख्त नियम बनाओ, कानून बनाओ, कि सिर्फ सरकार जब आज्ञा दे किसी आदमी को तभी वह संन्यासी हो सकता है। यदि संन्यास की आज्ञा सरकार से लेनी पड़े तो उसमें भी रिश्वत हो जाएगी। उसमें भी जो रिश्वत लगा सकेगा वह संन्यासी हो जाएगा। यदि संन्यासी होने के लिए रिश्वत देनी पड़ेगी, कि सरकारी लाइसेंस लेना पड़ेगा तो फिर संन्यास की सुगंध, संन्यास की स्वतंत्रता कहां रह जाएगी? इसलिए मैं यह देखता हूं भविष्य को ध्यान में रखकर कि अब संन्यास का एक नया अभियान होना चाहिए जिसमें कि संन्यासी घर में होगा, गृहस्थ होगा, पति होगा, पिता होगा, भाई होगा। शिक्षक, दुकानदार, मजदूर- वह जो है, वही होगा। वह सबका होगा। सब धर्म उसके अपने होंगे, वह सिर्फ धार्मिक होगा। धर्मों के विरोध ने दुनिया को बहुत गंदी कलह से भर दिया। इतना दुःखद हो गया सब कि ऐसा लगने लगा कि धर्मों से शायद फायदा कम हुआ, नुकसान ज्यादा हुआ। जब देखो तब धर्म के नाम पर खून बहता है। और जिस धर्म के नाम पर खून बहता हो अगर बच्चे उस धर्म को इनकार कर दें, और जिन पंडितों की बकवास से खून बहता हो अगर बच्चे उन पंडितों को ही इनकार कर दें और कहें कि बंद करो तुम्हारी किताबें, तुम्हारी कुरान और गीताएं, तुम्हारे शास्त्र- अब नहीं चाहिए, तो कुछ आश्चर्य तो नहीं है, स्वाभाविक है! यह बंद करना पड़ेगा। यह बंद हो सके, इसका एक ही रास्ता है। और वह रास्ता यह है कि संन्यास का फूल इतना ऊंचा उठे सीमाओं से कि सब धर्म उसके अपने हो जाएं और कोई एक धर्म उसका अपना न रहे तो हम इस पृथ्वी को जोड़ सकते हैं। अब तक धर्मों ने तोड़ा है, उसे कहीं से जोड़ना पड़ेगा। इसलिए मैं कहता हूं कि हिंदू आएं, मुसलमान आएं, जैन आएं, ईसाई आएं। उसे चर्च में प्रार्थना करनी हो वह चर्च में करे- मंदिर में तो मंदिर में, स्थानक में तो स्थानक में, मस्जिद में तो मस्जिद में! उसे जहां जो करना हो, करे! लेकिन वह अपने मन से संप्रदाय का विशेषण अलग कर दे, मुक्त हो जाए, सिर्फ संन्यासी हो जाए, सिर्फ धर्म का हो जाए। यह दूसरी बात है। और तीसरी बातः मेरे संन्यास में सिर्फ एक अनिवार्यता है, एक अनिवार्य शर्त है और वह है "ध्यान"। बाकी कोई व्रत, नियम ऊपर से मैं थोपने के लिए राजी नहीं हूं। क्योंकि जो भी व्रत और नियम ऊपर से थोपे जाते हैं वे पाखंड का निर्माण कर देते हैं। सिर्फ ध्यान की विधि, टेक्नीक संन्यासी सीखे, प्रयोग करे, ध्यान में गहरा उतरे। और मेरी अपनी समझ और सारी मनुष्य जाति के अनुभव का सार-निचोड़ यह है कि जो ध्यान में गहरा उतर जाए वह योगाग्नि में ही गहरा उतर रहा है। उसकी वृत्तियां भस्म हो जाती हैं, उसके इंद्रियों के रस खो जाते हैं। वह धीरे-धीरे सहज- जबरदस्ती नहीं, बलात नहीं, सहज-रूपांतरित होता चला जाता है। उसके भीतर से ही सब बदल जाता है। उसके बाहर के सब संबंध वैसे ही बने रहते हैं, वह भीतर से बदल जाता है। इसलिए सारी दुनिया उसके लिए बदल जाती है। ध्यान के अतिरिक्त संन्यासी के लिए और कोई अनिवार्यता नहीं है। यह कपड़े आप देखते हैं गैरिक- संन्यासी पहने हुए हैं। यह सुबह जैसा मैंने कहा, गांठ बांधने जैसा इनका उपयोग है। चौबीस घंटे याद रह सकेगा, स्मरण, रिमेंबरिंग रह सकेगा कि मैं संन्यासी हूं। बस, यह स्मरण इनको रह सके इसलिए इन्हें गैरिक वस्त्र दे दिए हैं। गैरिक वस्त्र भी

जानकर दिए हैं, वे अग्नि के रंग के वस्त्र हैं। भीतर भी ध्यान की अग्नि जलानी है, उसमें सब जला डालना है। भीतर भी ध्यान का यज्ञ जलाना है, उसमें सब आहुति दे देनी है। उनके गलों में आप मालाएं देख रहे हैं। उन मालाओं में एक सौ आठ गुरिए, वह एक सौ आठ ध्यान की विधियों के प्रतीक हैं। और उन्हें स्मरण रखने के लिए दिया है कि वह भलीभांति जानें कि चाहे अपने हाथ में एक ही गुरिया हो, लेकिन और एक सौ सात मार्गों से भी मनुष्य पहुंचा है, पहुंच सकता है। और एक सौ आठ गुरिए कितने ही अलग हों, उनके भीतर पिरोया हुआ धागा एक ही है। उस एक का स्मरण बना रहे एक सौ आठ विधियों में ताकि कभी उनके मन में यह ख्याल न आए और कोई एकांगीपन न पकड़ जाए कि मेरा ही मार्ग जिसमें मैं हूं, वही रास्ता पहुंचाता है। नहीं, सभी रास्ते पहुंचा देते हैं --... सभी रास्ते पहुंचा देते हैं! उनकी मालाओं में एक तस्वीर आप देख रहे हैं, शायद आपको भ्रम होगा कि मेरी है। मेरी बिल्कुल नहीं है। क्योंकि मेरी तस्वीर उतारने का कोई उपाय नहीं है। तस्वीर किसी की उतारी नहीं जा सकती, सिर्फ शरीरों की उतारी जा सकती है। मैं उनका गवाह हूं। इसलिए उन्होंने मेरे शरीर की तस्वीर लटका ली है। मैं सिर्फ गवाह हूं, गुरु नहीं हूं। क्योंकि मैं मानता हूं कि गुरु तो सिवाय परमात्मा के और कोई भी नहीं है। मैं सिर्फ विटनेस, साक्षी हूं कि मेरे सामने उन्होंने कसम ली है इस संन्यास की। मैं उनका गवाह-भर हूं। और इसलिए वह मेरे शरीर की रेखाकृति लटकाए हुए हैं, ताकि उनको स्मरण रहे कि उनके संन्यास में वे अकेले नहीं हैं, एक गवाह भी है। और उनके डूबने के साथ उनका गवाह भी डूबेगा। इस इतने स्मरण-भर के लिए तस्वीर है। ध्यान में वे गहरे उतरें, ध्यान के बहुत रास्ते हैं। अभी उनको दो रास्तों पर प्रयोग करवा रहा हूं। दोनों रास्ते "सिक्रोनाइज" कर सकें, इस तरह के हैं। उनमें तालमेल हो सके, इस तरह के हैं। एक ध्यान की प्रक्रिया मैं उनसे करवा रहा हूं जो कि प्रगाढ़तम प्रक्रिया है, बहुत "व्हिगरस" है और इस सदी के योग्य है। इस ध्यान की प्रक्रिया के साथ उनको कीर्तन और भजन के लिए भी कह रहा हूं। क्योंकि, वह ध्यान की प्रक्रिया करने के बाद कीर्तन साधारण कीर्तन? नहीं है। जो आप कहीं भी देख लेते है। आप जब देखते हैं कीर्तन तो आप सोचते होंगे ठीक है, कोई भी ऐसा साधारण कीर्तन कर रहा है। ऐसा ही कीर्तन यह है, इस भूल में आप मत पड़ना, क्योंकि जिस ध्यान के प्रयोग को वे कर रहे हैं उस प्रयोग के बाद यह कीर्तन कुछ और ही भीतरी रस की धार छोड़ देता है। आप भी ध्यान के उस प्रयोग को करके ऐसा कीर्तन करेंगे तब आपको पता चलेगा कि यह कीर्तन साधारण कीर्तन नहीं है। यह कीर्तन ध्यान की एक प्रक्रिया का आनुषांगिक अंग है। और उस आनुषांगिक अंग में जब वे लीन और डूब जाते हैं तब वे करीब-करीब अपने में नहीं होते, परमात्मा में होते हैं। और वह जो होने का अगर एक क्षण भी मिल जाए चौबीस घंटे में तो काफी है। उससे जो अमृत की एक बूंद मिल जाती है वह चौबीस घंटों को जीवन के रस से भर जाती है। जिन मित्रों को जरा भी ख्याल हो वे हिम्मत करें! और ध्यान रखें ----अभी कल ही कोई मेरे पास आया था, उसने कहा, सत्तर प्रतिशत तो मेरी इच्छा है कि लूं संन्यास, तीस प्रतिशत मन डांवांडोल होता है इसलिए नहीं लेता हूं। तो मैंने कहा- तीस प्रतिशत मन कहता है, मत लो तो तुम नहीं लेते। तीस प्रतिशत की मानते हो और सत्तर प्रतिशत कहता है लो और सत्तर प्रतिशत की नहीं मानते हो? तो तुम्हारे पास बुद्धि है! और कोई सोचना हो, जब "हंडरेड परसेंट," सौ प्रतिशत मन होगा तब लेंगे तो मौत पहले आ जाएगी। हंडरेड परसेंट मरने के बाद होता है। इससे पहले कभी मन होता नहीं। सिर्फ मरने के बाद जब आपकी लाश चढ़ाई जाती है चिता पर तब "हंडरेड परसेंट" मन संन्यास का होता है, लेकिन तब कोई उपाय नहीं रहता। जिंदगी में कभी मन सौ प्रतिशत किसी बात पर नहीं होता। लेकिन जब आप क्रोध करते हैं तब आप "हंडरेड परसेंट" मन के लिए रुकते हैं? जब आप चोरी करते हैं तब आप "हंडरेड परसेंट" मन के लिए रुकते हैं? जब बेईमानी करते हैं तब "हंडरेड परसेंट" मन के लिए रुकते हैं? कहते हैं- अभी बेईमानी नहीं करूंगा क्योंकि अभी मन का एक हिस्सा कह रहा है, मत करो, सौ प्रतिशत हो जाने दो! लेकिन जब संन्यास का सवाल उठता है तब सौ प्रतिशत के लिए रुकते हैं। बेईमानी किस के साथ कर रहे हैं? आदमी अपने को धोखा देने में बहुत कुशल है। एक आखिरी बात, फिर सुबह लेंगे, फिर अभी कीर्तन-भजन में संन्यासी

डूबेंगे, आपको भी निमंत्रण देता हूं, खड़े ही मत देखें। खड़े होकर, देखकर कुछ पता नहीं चलेगा, लोग नाचते हुए दिखायी पड़ेंगे। डूबें उनके साथ तो ही पता चलेगा कि उनके भीतर क्या हो रहा है! यह रस का एक कण अगर आपको भी मिल जाए तो शायद आपकी जिंदगी में फर्क हो। संन्यास या शुभ का कोई भी ख्याल जब भी उठ आए तब देर मत करना। क्योंकि अशुभ में हम कभी देर नहीं करते, अशुभ को कोई "पोस्टपोन" नहीं करता। शुभ को हम पोस्टपोन करते हैं। अनेक मित्र खबर ले आते हैं कि कहीं मेरा संप्रदाय तो नहीं बन जाएगा, कहीं ऐसा तो नहीं हो जाएगा? कहीं कोई मत, पंथ तो नहीं बन जाएगा? मत-पंथ ऐसे ही बहुत हैं, नए मत, पंथ की कोई जरूरत नहीं है। बीमारियां ऐसे ही काफी हैं और एक बीमारी जोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। इसलिए आपसे कहता हूं, यह कोई संप्रदाय नहीं है। संप्रदाय बनता ही किसी के खिलाफ है। ये संन्यासी किसी के खिलाफ नहीं हैं। ये सब धर्मों के भीतर जो सारभूत है, उसके पक्ष में हैं। कल तो एक मुसलमान महिला ने संन्यास लिया, उसके छह दिन पहले एक ईसाई युवक संन्यास लेकर गया है। ये जाएंगे अपने र्च्चों में, अपनी मस्जिदों में, अपने मंदिरों में। इनमें जैन हैं, हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं। उनसे कुछ उनका छीनना नहीं है। उनके पास जो है, उसे ही शुद्धतम उनसे कह देना है। अभी गीता पर बोल रहा हूं, अगले वर्ष कुरान पर बोलूंगा, फिर बाइबिल पर बोलूंगा ताकि जो-जो शुद्ध वहां है, सब पूरी-की-पूरी बात मैं आपको कह दूं। जिसे जहां से लेना हो वहां से ले ले। जिसे जिस कुएं से पीना हो पानी पी ले, क्योंकि पानी एक ही सागर का है। वह कुएं का मोह-भर न करे, इतना-भर न कहे कि मेरे कुएं में ही पानी है और किसी के कुएं में पानी नहीं है। फिर कोई संप्रदाय नहीं बनता, कोई मत नहीं बनता, कोई पंथ नहीं बनता। सोचें और स्फुरणा लगती हो तो संन्यास में कदम रखें, जहां हैं वहीं, कुछ आपसे छीनता नहीं। आपके भीतर के व्यर्थ को ही तोड़ना है, सार्थक को वहीं रहने देना है।
कल की चर्चा पर दो छोटे प्रश्न हैं। एक कि आपने वर्ण व्यवस्था के बारे में जो कहा है, क्या आप ----आज की स्थिति में उचित है इसे लाना? और दूसरा प्रश्न है कि आश्रमों की चर्चा आपने की और उम्र का भी विभाजन किया। संन्यास चौथी अवस्था में आता है। तो आप बहुत छोटी उम्र के लोगों को भी संन्यास की दीक्षा दे रहे हैं, क्या यह उचित है?
मैंने कहा, कि जीवन का एक क्रम है और संन्यास उसमें अंतिम अवस्था है, लेकिन वह क्रम टूट गया। और अभी तो ब्रह्मचर्य भी अंतिम अवस्था नहीं है। ब्रह्मचर्य पहली अवस्था थी उस क्रम में, लेकिन वह क्रम टूट गया। अब तो ब्रह्मचर्य अंतिम अवस्था भी नहीं है। पहले की तो बात ही छोड़ दें। मरते क्षण तक आदमी ब्रह्मचर्य की अवस्था में नहीं पहुंचता। अब तो संन्यास कब्र के आगे ही कहीं कोई अवस्था हो सकती है और जब बूढ़े ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न होते हों तो मैं कहता हूं, बच्चों को भी हिम्मत करके संन्यासी होना चाहिए-"जस्ट टू बेलैंस", संतुलन बनाए रखने को। जब बूढ़े भी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न होते हों तो बच्चों को भी संन्यासी होने का साहस करना चाहिए तो शायद बूढ़ों को भी शर्म आनी शुरू हो अन्यथा बूढ़ों को शर्म आनेवाली नहीं है- एक तो इसलिए। और दूसरा इसलिए भी कि जीवन का जो क्रम है, उस क्रम में बहुत-सी बातें अंतर्गर्भित, एंप्लाइड हैं। जैसे महावीर ने अंतिम अवस्था में संन्यास नहीं लिया, बुद्ध ने अंतिम अवस्था में संन्यास नहीं लिया, क्योंकि जिनके जीवन की, पिछले जन्म की यात्रा वहां पहुंच गई है जहां से इस जन्म में शुरू से ही संन्यास हो सकता है, वे पचहत्तर वर्ष तक प्रतीक्षा करें, यह बेमानी है। यही जन्म सब कुछ नहीं है। हम इस जन्म में कोरे कागज, टेब्यूला-रेसा की तरह पैदा नहीं होते हैं जैसा कि रूस और सारे लोग मानते हैं- गलत मानते हैं। हम इस जन्म में कोरे कागज की तरह पैदा नहीं होते हैं। हम सब "बिल्ट-इन प्रोग्राम" लेकर पैदा होते हैं। हमने पिछले जन्म में जो भी किया, जाना, सोचा और समझा है वह सब हमारे साथ जन्मता है। इसलिए जीवन के साधारण क्रम में यह बात सच है कि आदमी चौथी अवस्था में संन्यास को उपलब्ध हो, लेकिन जो लोग पिछले जन्म से संन्यास का गहरा अनुभव लेकर आए हों या जीवन के रस से पूरी तरह "डिस-इल्यूजंड" होकर आए हों, उनके लिए कोई भी कारण नहीं है। लेकिन वे सदा अपवाद होंगे। इसलिए बुद्ध और महावीर ने अपवाद के लिए

मार्ग खोजा। कभी-कभी नियम भी बंधन बन जाते हैं, कुछ के लिए हमें अपवाद छोड़ना पड़ता है। आइंस्टीन को अगर हम गणित उसी ढंग से सिखाएं जिस ढंग से हम सबको सिखाते हैं तो हम आइंस्टीन की शक्ति को जाया करेंगे। अगर हम मोझर्ट को उसी तरह संगीत सिखाएं जिस तरह हम सबको सिखाते हैं तो हम उसकी शक्ति को बहुत जाया करेंगे। मोझर्ट ने तीन साल की उम्र में संगीत में वह स्थिति पा ली जो कोई भी आदमी अभ्यास करके तीस साल में नहीं पा सकता। तो मोझर्ट के लिए हमें अपवाद बनाना पड़ेगा। बीथोवन ने सात साल में संगीत में वह स्थिति पा ली जो कि संगीतज्ञ सत्तर साल की उम्र में भी नहीं पा सकते अभ्यास करके। तो बीथोवन के लिए हमें अलग नियम बनाने पड़ेंगे। इनके लिए हमें नियम वही नहीं देने पड़ेंगे। इसलिए हर नियम के अपवाद तो होते ही हैं और अपवाद से नियम टूटता नहीं, सिर्फ सिद्ध होता है। "एक्सेप्शन प्रूव्ज द रूल"- वह जो अपवाद है वह सिद्ध करता है कि अपवाद है। इसलिए शेष सबके लिए नियम प्रतिकूल है। तो ऐसा नहीं है कि भारत में बचपन से संन्यास लेनेवाले लोग नहीं थे, वे थे लेकिन वे अपवाद थे। पर आज तो अपवाद को नियम बनाना पड़ेगा। क्यों बनाना पड़ेगा! वह इसलिए बनाना पड़ेगा क्योंकि आज तो स्थिति इतनी रुग्ण और अस्त-व्यस्त हो गई है कि अगर हम प्रतीक्षा करें कि लोग वृद्धावस्था में संन्यस्त हो जाएंगे तो हमारी प्रतीक्षा व्यर्थ होनेवाली है। उसके कई कारण हैं। वृद्धावस्था में संन्यास तभी फलित हो सकता है जब तीन आश्रम पहले गुजरे हों अन्यथा फलित नहीं हो सकता। आप कहें कि वृक्ष में फूल आएंगे बसंत में, लेकिन बसंत में फूल तभी आ सकते हैं जब बीज बोए गए हों, जब खाद डाली गयी हो, जब वर्षा में पानी भी पड़ा हो और गर्मी में धूप भी मिली हो। न गर्मी में धूप आई, न वर्षा में पानी गिरा, न बीज बोए गए, न माली ने खाद दिया और बसंत में फूल की प्रतीक्षा कर रहे हैं! चौथे आश्रम में संन्यास फलित होता था, यदि तीन आश्रम नियम-बद्ध रूप से पहले गुजरे हों, अन्यथा फलित नहीं होगा। ब्रह्मचर्य बीता हो पच्चीस वर्ष का, गृहस्थ बीता हो पच्चीस वर्ष का, वानप्रस्थ बीता हो पच्चीस वर्ष का तब अनिवार्यरूपेण, गणित के हल की तरह, चौथे आश्रम का चरण उठता था। आज तो कठिनाई यह है कि तीन चरण का कोई उपाय नहीं रहा। अब दो ही उपाय हैं, एक तो उपाय यह है कि हम संन्यास के सुंदरतम फूल को, जिससे सुंदर फूल जीवन में दूसरे नहीं खिलते हैं- मुरझा जाने दें, उसे खिलने ही न दें और या हम फिर हिम्मत करें और जहां भी ससंभव हो सके, जिस स्थिति में भी संभव हो सके, संन्यास के फूल को खिलाने की कोशिशि करें। इसका यह मतलब नहीं है कि सारे लोग संन्यासी हो सकते हैं। असल में जिसके भी मन में आकांक्षा पैदा होती है संन्यास की, उसका प्राण उसकी सूचना दे रहा है कि उसके पिछले जन्म में कुछ अर्जित है, जो संन्यास बन सकता है। फिर मैं यह कहता हूं कि बुरे काम को करके सफल हो जाना भी बुरा है, अच्छे काम को करके असफल हो जाना भी बुरा नहीं है। एक आदमी चोरी करके सफल भी हो जाए तो भी बुरा है। एक आदमी संन्यासी होकर असफल भी हो जाए तो बुरा नहीं है। अच्छे की तरह आकांक्षा और प्रयास भी बहुत बड़ी घटना है। और अच्छे के मार्ग पर हार जाना भी जीत है और बुरे के मार्ग पर जीत जाना भी हार है। और आज हारेंगे तो कल जीतेंगे। इस जन्म में हारेंगे तो अगले जन्म में जीतेंगे। लेकिन प्रयास, आकांक्षा, अभीप्सा होनी चाहिए। फिर चौथे चरण में जो संन्यास आता था उसकी व्याख्या बिल्कुल अलग थी और जिसे मैं संन्यास कहता हूं उसकी व्याख्या मजबूरी में अलग करनी पड़ी है- मजबूरी में, स्मरण रखें! चौथे चरण में जो संन्यास आता था वह पूरे जीवन से ऐसे अलग हो जाता था जैसे पका हुआ फल वृक्ष से अलग हो जाता है- जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिर जाता है। न वृक्ष को खबर मिलती है, न सूखे पत्ते को पता चलता कि कब अलग हो गया- बहुत "नेचुरल रिनन्सिएशन", सहज वैराग्य था। उसका कारण है। अभी भी पचहत्तर साल का बूढ़ा घर से टूट जाता है, अभी भी पचहत्तर साल का बूढ़ा घर में बोझ हो जाता है। कोई कहता नहीं, सब अनुभव करते हैं। बेटे की आंख से पता चलता है। बहू की आंख से पता चलता है, घर के बच्चों से पता चलता है कि अब इस बूढ़े को विदा होना चाहिए। कोई कहता नहीं। शिष्टाचार कहने नहीं देता। लेकिन अशिष्ट आचरण सब कुछ प्रकट कर देता है। टूट जाता है, बूढ़ा टूट ही जाता है, लेकिन बूढ़ा भी हटने को राजी नहीं है। वह भी पैर जमाए रहता है। और जितना हटाने के आंखों

में इशारे दिखाई पड़ते हैं वह उतने ही जोर से जमने की कोशिश करता है----बहुत बेहूदा है, ऐब्सर्ड है। असल में वक्त है हर चीज का, जब जुड़ा होना चाहिए, जब टूट जाना चाहिए। वक्त है, जब स्वागत है और वक्त है, जब अलविदा भी है। समय का जिसे बोध नहीं होता वह आदमी ना-समझ है। पचहत्तर साल की उम्र ठीक वक्त है क्योंकि तीसरी पीढ़ी, चौथी पीढ़ी तैयार हो गई जीने को तो आप कट गए जीवन की धारा से। अब जो नए बच्चे घर में आ रहे हैं उनसे आपका कोई भी तो संबंध नहीं है! आप उनके लिए करीब-करीब प्रेत हो चुके हैं, घोस्ट हो चुके हैं, अब आपका होना सिर्फ बाधा है। आपकी मौजूदगी सिर्फ जगह घेरती है। आपकी बातें सिर्फ कठिन मालूम पड़ती हैं। आपका होना ही बोझ हो गया है। उचित है कि हट जाएं, वैज्ञानिक है कि हट जाएं। लेकिन नहीं, आप कहां हटकर जाएं? ख्याल ही भूल गया है हटने का। ख्याल इसलिए भूल गया है कि तीन चरण पूरे नहीं हुए अन्यथा बच्चे हटाते, उसके पहले आप हट जाते। जो पिता बच्चों के हटाने के पहले हट जाता है, वह कभी अपना आदर नहीं खोता। जो मेहमान विदा करने के पहले विदा हो जाता है, वह सदा स्वागतपूर्ण विदाई पाता है। जो मेहमान डटा ही रहता है जब तक कि घर के लोग पुलिस को न बुला लाएं, तब तक हटेंगे नहीं- तब सब अशोभन हो जाता है, इससे घर के लोगों को भी तकलीफ होती है, अतिथि को भी तकलीफ होती है और अतिथि का भाव भी नष्ट होता है। ठीक समझदार आदमी वह है कि जब लोग रोक रहे थे तभी विदा हो जाए। जब घर के लोग रोते हों तभी विदा हो जाए, जब घर के लोग कहते हों रूकें, अभी मत जाइए, तभी विदा हो जाए। यही ठीक क्षण है। वह अपने पीछे दूसरों के मन में एक मधुर स्मृति छोड़ जाए। वह मधुर स्मृति घर के लोगों के लिए ज्यादा प्रीतिकर होगी, बजाय आपकी कठिन मौजूदगी के। लेकिन वह चौथा चरण था। तीन चरण जिसने पूरे किए हों और जिसने ब्रह्मचर्य का आनंद लिया हो और जिसने गृहस्थ जीवन में काम का सुख भोगा हो और जिसने वानप्रस्थ होने की, वन की तरफ मुख रखने की अभीप्सा और प्रार्थना में क्षण बिताए हों, वह चौथे चरण में अपने आप, चुपचाप चुपचाप विदा हो जाता है। नीत्से ने कहीं लिखा है- "राइपननेस इस ऑल"- पक जाना सब कुछ है। लेकिन अब तो कोई नहीं पकता, पका हुआ आदमी भी लोगों को धोखा देना चाहता है कि मैं अभी कच्चा हूं। मैंने सुना है कि एक स्कूल में शिक्षक बच्चों से पूछ रहा था कि एक व्यक्ति सन उन्नीस सौ में पैदा हुआ तो उन्नीस सौ पचास में उसकी उम्र कितनी होगी? तो एक बच्चे ने खड़े होकर पूछा कि वह स्त्री है या पुरुष? क्योंकि अगर पुरुष होगा तो पचास साल का हो गया होगा। अगर स्त्री होगी तो कहना मुश्किल है, कितनी साल की हुई हो! तीस की भी हो सकती है, चालीस की भी हो सकती है, पच्चीस की भी हो सकती है! लेकिन जो स्त्री पर लागू होता था अब वह पुरुष पर भी लागू है। अब उसमें कोई फर्क नहीं है। पका हुआ भी कच्चे होने का धोखा देना चाहता है। बूढ़ा आदमी भी नयी जवान लड़कियों से राग-रंग रचाना चाहता है। इसलिए नहीं कि नयी लड़की बहुत प्रीतिकर लगती है, बल्कि इसलिए कि वह अपने को धोखा देना चाहता है कि मैं अभी लड़का ही हूं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, बूढ़े लोग कम उम्र की स्त्रियों में इसलिए उत्सुक होते हैं कि वे भुलाना चाहते हैं कि हम बूढ़े हैं। और कम उम्र की स्त्रियां उनमें उत्सुक हो जाएं तो वे भूल जाते हैं कि वे बूढ़े हैं। अगर बट्रेंड रसेल अस्सी वर्ष की उम्र में बीस साल की लड़की से शादी करता है तो उसका असली कारण यह नहीं कि बीस साल की लड़की बहुत आकर्षक है। अस्सी साल के बूढ़े को आकर्षक नहीं रह जानी चाहिए- और साधारण बूढ़े को नहीं, बट्रेंड रसेल के हैसियत के बूढ़े को। हमारे मुल्क में अगर दो हजार साल पहले बट्रेंड रसेल पैदा हुआ होता तो अस्सी साल की उम्र में वह महर्षि हो जाता, लेकिन इंग्लैंड में वह अस्सी साल की उम्र में बीस साल की लड़की से शादी रचाने का उपाय करता है। वह धोखा दे रहा है अपने को। अभी भी मानने का मन होता है कि मैं बीस साल का हूं। और अगर बीस साल की लड़की उत्सुक हो जाए तो धोखा पूरा हो जाता है- "सेल्फ-डिसेप्शन" पूरा हो जाता है। क्योंकि बीस साल की लड़की उत्सुक ही नहीं हो सकती न, अस्सी साल के बूढ़े में! अस्सी साल का बूढ़ा भी मान लेता है कि अभी दो-चार ही साल बीते हैं बीस साल में। यह जो मनोदशा है ----मनोदशा में मैंने ----संन्यास की नयी ही धारणा का मेरा ख्याल है। अब हमें संन्यास के लिए चौथे चरण की प्रतीक्षा करनी कठिन है। आना चाहिए वह वक्त जब हम प्रतीक्षा कर सकें। लेकिन वह तभी होगा जब

आश्रम की व्यवस्था पृथ्वी पर लौटे, उसे लौटाने के लिए आश्रम में लगना जरूरी है। लेकिन जब तक वह नहीं होता तब तक हमें संन्यास की एक नयी धारणा पर- कहना चाहिए ट्रांजिटरी कंसेप्सन, एक संक्रमण की धारणा पर काम करना पड़ेगा। और वह यह कि जो जहां है, वृक्ष से टूटने की तो कोशिश न करें क्योंकि पका फल ही टूटता है। लेकिन कच्चा फल भी वृक्ष पर रहकर भी अनासक्त हो सकता है। जब पका हुआ फल कच्चे होने का धोखा दे सकता है तो कच्चा फल पका होने का अनुभव क्यों नहीं कर सकता है? इसलिए जो जहां है वही संन्यासी हो जाए। मेरे संन्यास की धारणा जीवन छोड़कर भागनेवाली नहीं है, मेरे संन्यास की धारणा वानप्रस्थ के करीब है। और मैं मानता हूं कि वानप्रस्थी ही नहीं है तो संन्यासी कहां से पैदा होंगे? तो मैं जिसको अभी संन्यासी कह रहा हूं वह ठीक से समझें तो वानप्रस्थी ही है। वानप्रस्थी का मतलब हैः वह घर में है लेकिन रुख उसका मंदिर की तरफ है। दुकान पर है लेकिन ध्यान उसका मंदिर की तरफ है। काम में लगा है लेकिन ध्यान किसी दिन काम से मुक्त हो जाने की तरफ है। राग में है, रंग में है, फिर भी साक्षी की तरफ उसका ध्यान दौड़ रहा है। उसकी सुरति परमात्मा में लगी है। इसके स्मरण का नाम ही मैं अभी संन्यास कहता हूं। यह संन्यास की बड़ी प्राथमिक धारणा है। लेकिन मैं मानता हूं, जैसी आज समाज की स्थिति है उसमें यह प्राथमिक संन्यास ही फलित हो जाए तो हम अंतिम संन्यास की भी आशा कर सकते हैं। बीज हो जाए तो वृक्ष की आशा कर सकते हैं। इसलिए जो जहां है उसे मैं वहीं संन्यासी होने को कहता हूं। घर में, दुकान पर, बाजार में, जो जहां है उसे वहीं संन्यासी होने को कहता हूं- सब करते हुए, लेकिन सब करते हुए भी संन्यासी होने की जो धारणा है, संकल्प है वह सबसे तोड़ देगा। और साक्षी पैदा होने लगेगा। आज नहीं कल यह वानप्रस्थ-जीवन, संन्यस्त जीवन में रूपांतरित हो जाए ऐसी आकांक्षा और आशा की जा सकती है।

नव-संन्यास क्या?
सातवां प्रवचन

सावधिक संन्यास की धारणा

मेरे मन में इधर बहुत दिन से एक बात निरंतर ख्याल में आती है और वह यह
है कि सारी दुनिया से आनेवाले दिनों में संन्यासी के समाप्त हो जाने की संभावना है। संन्यासी आनेवाले पचास वर्ष के बाद पृथ्वी पर नहीं बच सकेगा, वह संस्था विलीन हो जाएगी। उस संस्था की नीचे की ईंटें तो खिसका दी गयी हैं और अब उसका मकान भी गिर जाएगा। लेकिन संन्यास इतनी बहुमूल्य चीज है कि जिस दिन दुनिया से विलीन हो जाएगा उस दिन दुनिया का बहुत अहित हो जाएगा। मेरे देखे पुराना संन्यास तो चला जाना चाहिए पर संन्यास बच जाना चाहिए और इसके लिए सावधिक संन्यास का, पीरियाडिकल रिनन्सिएशन का मेरे मन में ख्याल है। ऐसा कोई आदमी नहीं होना चाहिए जो वर्ष में एक महीने के लिए संन्यासी न हो। जीवन में तो कोई भी ऐसा आदमी नहीं होना चाहिए जो दो-चार बार संन्यासी न हो गया हो। स्थायी संन्यास खतरनाक सिद्ध हुआ है। कोई आदमी पूरे जीवन के लिए संन्यासी हो जाए, उसके दो खतरे हैं। एक खतरा तो यह है कि वह आदमी जीवन से दूर हट जाता है, और परमात्मा के प्रेम की, और आनंद की जो भी उपलब्धियां हैं वे जीवन के घनीभूत अनुभव में हैं, जीवन के बाहर नहीं। दूसरी बात यह होती है कि जो आदमी जीवन से हट जाता है उसकी जो शांति, उसका जो आनंद है वह जीवन में बिखरने से बच जाता है, जीवन उसका साझीदार नहीं हो पाता। तीसरी बात यह है कि लोगों को यह ख्याल पैदा हो जाता है कि गृहस्थ अलग है और संन्यासी अलग है। तो गलत काम करने पर हमें यह ख्याल रहता है कि हम तो गृहस्थ हैं, यह तो करना हमारी मजबूरी है, संन्यासी हो जाएंगे तो हम नहीं करेंगे। तो धर्म और जीवन के बीच का एक फासला पैदा हो जाता है। मेरी दृष्टि में संन्यास जीवन का अंग होना चाहिए। संन्यास जीवन को समझने और पहचानने की विधि होनी चाहिए। ऐसे आदमी का जीवन अधूरा और उसकी शिक्षा अधूरी माननी चाहिए- जो आदमी वर्ष में थोड़े दिनों के लिए संन्यासी न हो जाता हो! अगर बारह महीने में, एक-दो महीने कोई व्यक्ति परिपूर्ण संन्यासी का जीवन जीता हो तो उसके जीवन में आनंद के इतने द्वार खुल जाएंगे, जिसकी उसे कल्पना भी नहीं हो सकती। इस दो महीने में वह संन्यासी रहेगा। फिर वह पूरी तरह ही संन्यासी रहेगा दो महीने। इन दो महीनों में उसका इस दुनिया से कोई भी संबंध नहीं है। संन्यासी का भी जितना संबंध होता है दुनिया से उतना भी उसका दो महीने में संबंध नहीं है। और यह जानकर आपको हैरानी होगी कि जो आदमी पूरे जीवन के लिए संन्यासी हो जाता है वह गृहस्थियों के ऊपर निर्भर हो जाता है। इसलिए वह दिखता तो है संसार से दूर, लेकिन संसार के पास ही उसे रहना पड़ता है। लेकिन जो आदमी बारह महीनों में सिर्फ दो महीने के लिए संन्यासी होगा वह किसी के ऊपर निर्भर नहीं होगा। वह अपने ही दस महीने के गृहस्थ जीवन पर निर्भर होगा, वह संसार के ऊपर आश्रित नहीं होगा। इसलिए किसी से भयभीत भी नहीं होगा, वह किसी से संबंधित भी नहीं होगा। अगर एक आदमी पूरे जीवन के लिए संन्यासी होगा तो वह किसी का आश्रित होगा ही। वह बच भी नहीं सकता और अंतिम परिणाम यह होता है कि संन्यासी दिखाई तो पड़ते हैं कि हमारे नेता हैं लेकिन वे अनुयायी के भी अनुयायी हो जाते हैं। वे उनके भी पीछे चलते हैं। संन्यासी को आज्ञा देते हैं गृहस्थ कि तुम ऐसा करो और वैसा मत करो। गृहस्थ उनका मालिक हो जाता है क्योंकि वह उनको रोटी देता है। संन्यासी गुलाम हो गया है। संन्यासी की गुलामी टूट सकती है एक ही रास्ते से कि वह कभी-कभी संन्यासी हो। वर्ष में ग्यारह महीने वह गृहस्थ हो और एक महीने संन्यासी, तो वह किसी के ऊपर निर्भर नहीं होगा। वह अपनी ग्यारह महीने की कमाई पर निर्भर होगा। फिर उसे किसी से लेना-देना नहीं है। वह इस एक महीने की पूरी फ्रीडम, पूरी स्वतंत्रता का उपयोग कर सकता है, बिना किसी के आश्रय के। वह इस एक महीने में अपने को परिपूर्ण संन्यासी अनुभव करेगा जो कभी कोई संन्यासी नहीं कर पाता। तब वह पूरी मुक्ति से जी सकेगा। इस एक महीने वह जिस विधि से जिएगा और जिस आनंद को, जिस शांति को अनुभव करेगा, जिस

स्वतंत्रता में वह प्रवेश करेगा, उसी को लेकर वापस लौटेगा गृहस्थ जीवन में। और जिंदगी के घनेपन में प्रयोग करेगा जो उसने एकांत में सीखा था। और परखेगा कि क्या भीड़ में उसका उपयोग कर सकता है? क्योंकि एकांत में शिक्षा होती है और भीड़ में परीक्षा होती है। जो भीड़ से बच जाता है वह परीक्षा से बच जाता है। उसकी शिक्षा अधूरी है। जो तुमने अकेले में जाना है अगर उसका भीड़ में उपयोग नहीं कर सकते तो जानना कि वह गलत है। वह बहुत मूल्य का नहीं है। वहां कसौटी है, क्योंकि वहां विरोध है, वहां परिस्थितियां अनुकूल नहीं हैं। जहां सब कुछ प्रतिकूल है वहां भी मैं शांत रह सकता हूं या नहीं? वहां भी मैंने जो एक महीने संन्यास साधा था, आनंद पाया था- क्या मैं घर के भीतर, दुकान पर बैठकर भी संन्यास को साध सकता हूं या नहीं? इसका ही बाकी ग्यारह महीने निरीक्षण करना है! वर्ष भर बाद उसे फिर महीनेभर के लिए लौट आना है ताकि आनेवाले वर्ष भर की परीक्षा के लिए वह तैयार हो सके। नयी सीढ़ियां पार कर सके। अगर एक आदमी बीस साल की उम्र के बाद सत्तर साल तक जिए और पचास वर्ष में पचास महीने के लिए वह संन्यासी हो सके तो इस जगत में ऐसा कोई सत्य नहीं है जिनसे वह अपरिचित रह जाए, ऐसी कोई अनुभूति नहीं है जिससे वह अनजाना रह जाए। और यह जो संन्यास होगा वह पीरियाडिकल- एक अवधि-भर के लिए लिया गया संन्यास होगा। यह उसे जीवन से नहीं तोड़ेगा। अन्यथा हमारा जो संन्यासी है वह जीवन-विरोधी हो गया है। पत्नी और बच्चे उससे भयभीत हैं, मां-बाप उससे भयभीत हैं, क्योंकि वह जीवन को उजाड़कर चला जाता है। यह जो कभी-कभी संन्यासी होना है, इसमें भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं है। बल्कि जब वह लौटेगा तब उसकी पत्नी पाएगी कि वह और भी प्यारा पति होकर लौटा है। उसकी मां पाएगी कि वह ज्यादा श्रद्धा, ज्यादा प्रेम, ज्यादा आदर भरा हुआ बेटा होकर लौटा है। और इस एक महीने के बाद ग्यारह महीने घर में जिएगा तो जो सुगंध उसने पायी है वह सब तरफ बिखरेगी उससे और प्रेम-पूर्ण दुनिया बनेगी। अब तक के संन्यासी ने दुनिया को उजाड़ा है, बिगाड़ा है- उसने बनाया नहीं है। जीवन को निर्मित करने में, सृजन करने में वह सहयोगी और मित्र नहीं रहा है। मेरे मन में एक अवधि के लिए लिया संन्यास अनिवार्य है, वह मेरे ख्याल में है। अब तक जैसे संन्यासी हुए हैं वे दुनिया से समाप्त हो जाएं तो कोई डर नहीं है, संन्यास बचा रहना चाहिए। और इस भांति जो संन्यास व्यापक रूप से डिफ्यूज हो जाएगा बड़े पैमाने पर- क्योंकि हर आदमी को हक हो जाएगा फिर संन्यासी होने का- अभी हर आदमी को हक नहीं हो सकता। क्योंकि अभी हर आदमी संन्यासी हो जाए तो जीवन एक मरघट बन जाए, मृत्यु बन जाए। सावधिक संन्यास में हर आदमी को सुविधा हो जाएगी, संन्यासी होने की। अभी तक हर आदमी को संन्यासी होने का हक पुराने संन्यास में नही हो सकता था क्योंकि अगर आदमी संन्यासी हो जाए तो जीवन एक मरघट बन जाएगा, मृत्यु बन जाएगा। जो काम हर आदमी न कर सकता हो, उस काम में निश्चित ही कोई भूल है। जो काम हर आदमी का अधिकार न बन सकता हो, उसमें जरूर कोई भूल है। अगर सारे लोग आजीवन संन्यासी हो जाएं तो जीवन आज उजड़ जाए, इसी क्षण। आजीवन संन्यास भ्रांत है, गलत है। तो जो संन्यासी है उसको भी वापस लौट आना पड़ेगा जीवन में। और संन्यास बच सके दुनिया में इसके लिए बड़ा प्रयोग करना जरूरी है।

पूरब की श्रेष्ठतम देनः संन्यास मनुष्य है एक बीज- अनंत संभावनाओं से भरा हुआ। बहुत फूल खिल सकते हैं मनुष्य में, अलग-अलग प्रकार के। बुद्धि विकसित हो मनुष्य की तो विज्ञान का फूल खिल सकता है और हृदय विकसित हो तो काव्य का और पूरा मनुष्य ही विकसित हो जाए तो संन्यास का। संन्यास है, समग्र मनुष्य का विकास। और पूरब की प्रतिभा ने पूरी मनुष्यता को जो सबसे बड़ा दान दिया- वह है संन्यास। संन्यास का अर्थ है, जीवन को एक काम की भांति नहीं वरन एक खेल की भांति जीना। जीवन नाटक से ज्यादा न रह जाए, बन जाए एक अभिनय। जीवन में कुछ भी इतना महत्वपूर्ण न रह जाए कि चिंता को जन्म दे सके। दुःख हो या सुख, पीड़ा हो या संताप, जन्म हो या मृत्यु, संन्यास का अर्थ है इतनी समता में जीना- हर स्थिति में- ताकि भीतर कोई चोट न पहुंचे। अंतरतम में कोई झंकार भी पैदा न हो। अंतरतम ऐसा अछूता रह जाए जीवन की सारी यात्रा में, जैसे कमल के पत्ते पानी में रहकर भी पानी से अछूते रह जाते हैं। ऐसे

अस्पर्शित, ऐसे असंग, ऐसे जीवन से गुजरते हुए भी जीवन से बाहर रहने की कला का नाम संन्यास है। यह कला विकृत भी हुई। जो भी इस जगत में विकसित होता है, उसकी संभावना विकृत होने की भी होती है। संन्यास विकृत हुआ, संसार के विरुद्ध खड़े हो जाने के कारण- संसार की निंदा, संसार की शत्रुता के कारण। संन्यास खिल सकता है वापस, फिर मनुष्य के लिए आनंद का मार्ग बन सकता है, संसार के साथ संयुक्त होकर, संसार को स्वीकृत करके। संसार का विरोध करनेवाला, संसार की निंदा और संसार को शत्रुता के भाव से देखनेवाला संन्यास अब आगे संभव नहीं होगा। अब उसका कोई भविष्य नहीं है। है भी रुग्ण वैसी दृष्टि। यदि परमात्मा है तो यह संसार उसकी ही अभिव्यक्ति है। इसे छोड़कर, इसे त्यागकर परमात्मा को पाने की बात ही ना-समझी है। इस संसार में रहकर ही इस संसार से अछूते रह जाने की जो सामर्थ्य विकसित होती है, वही इस संसार का पाठ है, वही इस संसार की सिखावन है। और तब संसार एक शत्रु नहीं वरन एक विद्यालय हो जाता है और तब कुछ भी त्याग करके- सचेष्ट रूप से त्याग करके, छोड़कर भागने की पलायन-वृत्ति को प्रोत्साहन नहीं मिलता वरन जीवन को उसकी समग्रता में, स्वीकार में, आनंदपूर्वक, प्रभु का अनुग्रह मानकर जीने की दृष्टि विकसित होती है। भविष्य के लिए मैं ऐसे ही संन्यास की संभावना देखता हूं, जो परमात्मा और संसार के बीच विरोध नहीं मानता, कोई खाई नहीं मानता वरन संसार को परमात्मा का प्रकट रूप मानता है। परमात्मा को संसार का अप्रकट छिपा हुआ प्राण मानता है। संन्यास को ऐसा देखेंगे तो वह जीवन को दीन-हीन करने की बात नहीं, जीवन को और समृद्धि और संपदा से भर देने की बात है। वास्तव में जब भी कोई व्यक्ति जीवन को बहुत जोर से पकड़ लेता है तब ही जीवन कुरूप हो जाता है। इस जगत में जो भी हम जोर से पकड़ेंगे, वही कुरूप हो जाएगा। और जिसे भी हम मुक्त रख सकते हैं, स्वतंत्र रख सकते हैं, मुट्ठी बांधे बिना रख सकते हैं, वही इस जगत में सौंदर्य को, श्रेंष्ठता को, शिवत्व को उपलब्ध हो जाता है। जीवन के सब रहस्य ऐसे हैं, जैसे कोई मुट्ठी में हवा को बांधना चाहे। जितने जोर से बांधी जाती है मुट्ठी, हवा मुट्ठी के उतने ही बाहर हो जाती है। खुली मुट्ठी रखने की सामर्थ्य हो तो मुट्ठी हवा से भरी रहती है और बंधी मुट्ठी ही हवा से खाली हो जाती है। उल्टी दिखाई पड़नेवाली, उलट-बांसी-सी यह बात कि मुट्ठी खुली हो तो हवा भरी रहती है और बंद की गई हो, बंद करने की आकांक्षा हो तो मुट्ठी खाली हो जाती है, जीवन के समस्त रहस्यों पर यह बात लागू होती है। कोई अगर प्रेम को पकड़ेगा, बांधेगा तो प्रेम नष्ट हो जाएगा। कोई अगर आनंद को पकड़ेगा, बांधेगा तो आनंद नष्ट हो जाएगा और अगर कोई जीवन को भी पकड़ना चाहे, बांधना चाहे तो जीवन भी नष्ट हो जाता है। संन्यास का अर्थ हैः खुली हुई मुट्ठी वाला जीवन, जहां हम कुछ भी बांधना नहीं चाहते, जहां जीवन एक प्रवाह है और सतत नए की स्वीकृति और कल जो दिखाएगा उसके लिए भी परमात्मा को धन्यवाद का भाव। बीते हुए कल को भूल जाना है, क्योंकि बीता हुआ कल अब स्मृति के अतिरिक्त और कहीं नहीं है। जो हाथ में है, उसे भी छोड़ने की तैयारी रखनी है, क्योंकि इस जीवन में सब कुछ क्षणभंगुर है। जो अभी हाथ में है, क्षणभर बाद हाथ के बाहर हो जाएगा। जो सांस अभी भीतर है, क्षणभर बाद बाहर होगी। ऐसा प्रवाह है जीवन। इसमें जिसने भी रोकने की कोशिश की, वही गृहस्थ है और जिसने जीवन के प्रवाह में बहने की सामर्थ्य साध ली, जो प्रवाह के साथ बहने लगा- सरलता से, सहजता से, असुरक्षा में, अनजान में, अज्ञान में- वही संन्यासी है। संन्यास के तीन बुनियादी सूत्र ख्याल में ले लेने जैसे हैं। पहला- जीवन एक प्रवाह है। उसमें रुक नहीं जाना, ठहर नहीं जाना, वहां कहीं घर नहीं बना लेना है। एक यात्रा है जीवन। पड़ाव हैं बहुत, लेकिन मंजिल कहीं भी नहीं। मंजिल जीवन के पार परमात्मा में है। दूसरा सूत्र- जीवन जो भी दे उसके साथ पूर्ण संतुष्टि और पूर्ण अनुग्रह, क्योंकि जहां असंतुष्ट हुए हम तो जीवन जो देता है, उसे भी छीन लेता है और जहां संतुष्ट हुए हम कि जीवन जो नहीं देता, उसके भी द्वार खुल जाते हैं। और तीसरा सूत्र- जीवन में सुरक्षा का मोह न रखना। सुरक्षा संभव नहीं है। तथ्य ही असंभावना का है। असुरक्षा ही जीवन है। सच तो यह है कि सिर्फ मृत्यु ही सुरक्षित हो सकती है। जीवन तो असुरक्षित होगा ही। इसलिए जितना जीवंत व्यक्तित्व होगा, उतना असुरक्षित होगा और जितना मरा

हुआ व्यक्तित्व होगा, उतना सुरक्षित होगा। सुना है मैंने, एक सूफी फकीर मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने मरते वक्त वसीयत की थी कि मेरी कब्र पर दरवाजा बना देना और उस दरवाजे पर कीमती से कीमती, वजनी से वजनी, मजबूत से मजबूत ताला लगा देना, लेकिन एक बात ध्यान रखना, दरवाजा ही बनाना, मेरी कब्र की चारों तरफ दीवार मत बनाना। आज भी नसरुद्दीन की कब्र पर दरवाजा खड़ा है, बिना दीवारों के, ताले लगे हैं- जोर से, मजबूत। चाबी समुद्र में फेंक दी गई, ताकि कोई खोज न ले। नसरुद्दीन की मरते वक्त यह आखिरी मजाक थी- संन्यासी की मजाक, संसारियों के प्रति। हम भी जीवन में कितने ही ताले डालें, सिर्फ ताले ही रह जाते हैं। चारों तरफ जीवन असुरक्षित है सदा, कहीं कोई दीवार नहीं है। जो इस तथ्य को स्वीकार करके जीना शुरू कर देता है- कि जीवन में कोई सुरक्षा नहीं है, असुरक्षा के लिए राजी हूं, मेरी पूर्ण सहमति है, वही संन्यासी है और जो असुरक्षित होने को तैयार हो गया- निराधार होने को- उसे परमात्मा का आधार उपलब्ध हो जाता है। संन्यास का निर्णय और ध्यान में छलांग क्या संन्यास ध्यान की गति बढ़ाने में सहायक होता है? संन्यास का अर्थ ही यही है कि मैं निर्णय लेता हूं कि अब से मेरे जीवन का केंद्र ध्यान होगा। और कोई अर्थ ही नहीं है संन्यास का। जीवन का केंद्र धन नहीं होगा, यश नहीं होगा, संसार नहीं होगा। जीवन का केंद्र ध्यान होगा, धर्म होगा, परमात्मा होगा- ऐसे निर्णय का नाम ही संन्यास है। जीवन के केंद्र को बदलने की प्रक्रिया संन्यास है। वह जो जीवन के मंदिर में हमने प्रतिष्ठा कर रखी है- इंद्रियों की, वासनाओं की, इच्छाओं की, उनकी जगह मुक्ति की, मोक्ष की, निर्वाण की, प्रभु-मिलन की, मूर्ति की प्रतिष्ठा ध्यान है। तो जो व्यक्ति ध्यान को जीवन के और कामों में एक काम की तरह करता है। चौबीस घंटों में बहुत कुछ करता है, घंटेभर ध्यान भी कर लेता है- निश्चित ही उस व्यक्ति के बजाय जो व्यक्ति अपने चौबीस घंटे के जीवन को ध्यान को समर्पित करता है, चाहे दुकान पर बैठेगा तो ध्यानपूर्वक, चाहे भोजन करेगा तो ध्यानपूर्वक, चाहे बात करेगा किसी के साथ तो ध्यानपूर्वक, रास्ते पर चलेगा तो ध्यानपूर्वक, रात सोने जाएगा तो ध्यानपूर्वक, सुबह में बिस्तर से उठेगा तो ध्यानपूर्वक- ऐसे व्यक्ति का अर्थ है संन्यासी- जो ध्यान को अपने चौबीस घंटों पर फैलाने की आकांक्षा से भर गया है। निश्चित ही संन्यास ध्यान के लिए गति देगा। और ध्यान संन्यास के लिए गति देता है। ये संयुक्त घटनाएं हैं। और मनुष्य के मन का नियम है कि निर्णय लेते ही मन बदलना शुरू हो जाता है। आपने भीतर एक निर्णय किया कि आपके मन में परिवर्तन होना शुरू हो जाता है। वह निर्णय ही परिवर्तन के लिए "क्रिस्टलाइजेशन", समग्रीकरण बन जाता है। कभी बैठे-बैठे इतना ही सोचें कि चोरी करनी है तो तत्काल आप दूसरे आदमी हो जाते हैं- तत्काल! चोरी करनी है इसका निर्णय आपने लिया कि चोरी के लिए जो मददरूप है--... वह मन आपको देना शुरू कर देता है- सुझाव कि क्या करें, क्या न करें, कैसे कानून से बचें, क्या होगा, क्या नहीं होगा! एक निर्णय मन में बना कि मन उसके पीछे काम करना शुरू कर देता है। मन आपका गुलाम है। आप जो निर्णय ले लेते हैं, मन उसके लिए सुविधा शुरू कर देता है कि अब जब चोरी करनी ही है तो कब करें, किस प्रकार करें कि फंस न जाएं, मन इसका इंतजाम जुटा देता है। जैसे ही किसी ने निर्णय लिया कि मैं संन्यास लेता हूं कि मन संन्यास के लिए भी सहायता पहुंचाना शुरू कर देता है। असल में निर्णय न लेनेवाला आदमी ही मन के चक्कर में पड़ता है। जो आदमी निर्णय लेने की कला सीख जाता है, मन उसका गुलाम हो जाता है। वह जो अनिर्णयात्मक स्थिति है वही मन है- "इनडिसीसिवनेस इज माइंड"। निर्णय की क्षमता, डिसीसिवनेस, ही मन से मुक्ति हो जाती है। वह जो निर्णय है, संकल्प है, बीच में खड़ा हो जाता है, मन उसके पीछे चलेगा। लेकिन जिसके पास कोई निर्णय नहीं है, संकल्प नहीं है उसके पास सिर्फ मन होता है। और उस मन से हम बहुत पीड़ित और परेशान होते हैं। संन्यास का निर्णय लेते ही जीवन का रूपांतरण शुरू हो जाता है, संन्यास के बाद तो होगा ही- निर्णय लेते ही जीवन का रूपांतरण शुरू हो जाता है। और ध्यान रहे, आदमी बहुत अनूठा है। उसका अनूठापन ऐसा है कि कोई अगर आपसे कहे कि दो हजार, या दो करोड़ या अरब तारे हैं तो आप बिल्कुल मान लेते हैं। लेकिन अगर किसी दीवार पर नया पेंट किया गया हो और लिखा हो कि ताजा पेंट है, छूना

मत, तो छूकर देखते ही हैं कि है भी ताजा कि नहीं! जब तक उंगली खराब न हो जाए तब तक मन नहीं मानता। सूरज को बिना सोचे मान लेते हैं और दीवार पर पेंट नया हो तो छूकर देखने का मन होता है। जितनी दूर की बात हो उतनी बिना दिक्कत के आदमी मान लेता है। जितनी निकट की बात हो उतनी दिक्कत खड़ी होती है। संन्यास आपके सर्वाधिक निकट की बात है। उससे निकट की और कोई बात नहीं है। अगर जो विवाह करेंगे तो वह भी दूर की बात है। क्योंकि उसमें दूसरा सम्मिलित है, इनवाल्व्ड है। आप अकेले नहीं हैं। संन्यास अकेली घटना है जिसमें आप अकेले ही हैं, कोई दूसरा सम्मिलित नहीं है। बहुत निकट की बात है। उसमें आप बड़ी परेशानी में हैं। उस निर्णय को लेकर बड़ी कठिनाई होती है मन को। जितनी बड़ी भीड़ हो हम उतना जल्दी निर्णय ले लेते हैं। अगर दस हजार आदमी एक मस्जिद को जलाने जा रहे हैं तो हम बिल्कुल मजे से उसमें चले जाते हैं। यदि दस हजार आदमी मंदिर में आग लगा रहे हैं तो हम बराबर सम्मिलित हो जाते हैं। दस हजार लोग हैं, रिस्पांसिबिलिटी, जिम्मेवारी फैली हुई है, आप अकेले जिम्मेवार नहीं हैं- दस हजार आदमी साथ हैं। अगर कल बात हुई तो आप कहेंगे कि इतनी बड़ी भीड़ थी, मेरा होना, न होना, बराबर था। नहीं भी होता मैं तो भी मंदिर जलनेवाला ही था। मैं तो खड़ा था, चला गया। जिम्मेवारी मालूम नहीं पड़ती। लेकिन संन्यास ऐसी घटना है जिसमें सिर्फ तुम ही जिम्मेवार हो, और कोई नहीं, ओनली यू आर रिस्पांसिबल, नो वन ऐल्स। इसलिए निर्णय करने में बड़ी मुश्किल होती है। अकेले ही हैं, किसी दूसरे पर जिम्मेवारी डाली नहीं जा सकती। किसी से आप यह नहीं कह सकते कि भीड़ की वजह से, तुम्हारी वजह से मैं लेता हूं। इसलिए निर्णय को हम टालते चले जाते हैं। अकेला आदमी जिस दिन निर्णय लेने में समर्थ हो जाता है उसी दिन आत्मा की शक्ति जागनी शुरू होती है, भीड़ के साथ चलने से कभी कोई आत्मा की शक्ति नहीं जगती। दूसरी मजे की बात है कि लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि नब्बे प्रतिशत तो मेरा मन तैयार है संन्यास लेने के लिए, दस प्रतिशत नहीं है, तो जब पूरा हो जाएगा मेरा सौ प्रतिशत मन तब मैं संन्यास ले लूंगा। लेकिन इस आदमी ने कभी विवाह करते समय नहीं सोचा कि सौ प्रतिशत मन तैयार है! चोरी करते वक्त नहीं सोचा कि सौ प्रतिशत मन तैयार है! क्रोध करते वक्त नहीं सोचा कि सौ प्रतिशत मन तैयार है! गाली देते समय नहीं सोचा कि सौ प्रतिशत मन तैयार है! सिर्फ संन्यास के समय यह कहता है कि सौ प्रतिशत मन तैयार होगा तब! यह अपने को धोखा दे रहा है। यह भली-भांति जानता है कि सौ प्रतिशत मन कभी तैयार नहीं होगा इसलिए बचाव की सुविधा बनाता है। अगर यही धारणा है कि सौ प्रतिशत तैयार होगा तभी कुछ करेंगे, तो ध्यान रखना, आपका सब करना आपको बंद करना पड़ेगा। सौ प्रतिशत मन आपका कभी किसी चीज में तैयार नहीं होता है। लेकिन बाकी सब काम आदमी जारी रखता है। और यह भी मजे की बात है कि जब आप तय करते हैं कि नब्बे प्रतिशत मन तो कहता है, दस प्रतिशत अभी नहीं कहता है; तो आप को पता नहीं है कि आप संन्यास नहीं ले रहे हैं तो आप दस प्रतिशत के पक्ष में निर्णय लेते हैं, नब्बे प्रतिशत को इनकार करते हैं। असल में न लेने में ऐसा लगता है कि जैसे कोई बात ही नहीं हुई। संन्यास न लेना भी निर्णय है। दस प्रतिशत के पक्ष में निर्णय लेते हैं, नब्बे प्रतिशत को छोड़ देते हैं तो आपकी जिंदगी बहुत दुविधा में भरी जिंदगी हो जाएगी। अगर निर्णय लेना है तो इक्यावन प्रतिशत भी हो तो निर्णय ले लेना चाहिए, उनचास प्रतिशत को छोड़ देना चाहिए। लेकिन हम ऐसे हैं कि अगर हमें एक प्रतिशत भी गलत कोई बात मन कहता है तो निन्यानबे को छोड़कर एक प्रतिशत वाला काम कर लेते हैं और निन्यानबे प्रतिशत भी कोई ठीक बात मन कहता हो तो एक प्रतिशत वाली बात पर निर्णय लेते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि शायद आदमी आनंद चाहता ही नहीं। कहता जरूर है कि आनंद चाहते हैं, शांति चाहते हैं, लेकिन शायद आदमी आनंद चाहता ही नहीं। क्योंकि बातें वह आनंद के चाहने की करता है, लेकिन जो कुछ भी वह करता है उससे दुःख ही मिलता है, उस सबसे दुःख ही मिलता है। उपाय सब दुःख के करता है, बातें आनंद की करता है। और कभी गौर से नहीं देखता है कि मेरा दुःख, मैं जो कर रहा हूं, उन्हीं उपायों पर निर्भर है। संन्यास आनंद का निर्णय है। अब मैं आनंद चाहता हूं- इतना ही नहीं, आनंद को पाने के लिए कुछ करूंगा भी। संन्यास इस बात का निर्णय है कि अब मैं सिर्फ आनंद की चाह

ही नहीं करूंगा, उस चाह को पूरा करने के लिए जीवन दांव पर भी लगाऊंगा। संन्यास इस बात की भी अपने प्रत्यक्ष, अपने सामने घोषणा है कि अब मैं दुःख से बचने की कोशिश ही नहीं करूंगा, दुःख जिन-जिन चीजों से पैदा होता है उनको छोड़ने का सामर्थ्य और साहस भी जुटाऊंगा। यह निर्णय लेते ही आपकी जिंदगी नए केंद्र पर रूपांतरित होती है और स्वभावतः ध्यान फैलना शुरू हो जाता है। क्योंकि ध्यान तो सिर्फ एक विधि है। जिसने भी धर्म की ओर जाना शुरू किया, उसे ध्यान की विधि के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रह जाता लेकिन हम ऐसे लोग हैं कि दौड़ते हैं हम धन की तरफ और ध्यान की विधि का उपाय करना चाहते हैं। बहुत मुश्किल होगा। क्योंकि धन को पाने के लिए ध्यान बाधा बन सकता है, सहयोगी नहीं। क्योंकि धन के पाने के लिए जो-जो भी करना पड़ता है, ध्यान जैसे गहरा होगा, उस सबमें अड़चनें पड़ने लगेंगी, मुश्किल पड़ने लगेगा। मुझसे कोई पूछता है कि क्या हम ध्यान कर सकते हैं और रिश्वत भी ले सकते हैं? मैं उनसे कहता हूं कि मजे से रिश्वत लो और ध्यान किए जाओ। क्योंकि जैसे ही ध्यान का बीज थोड़ा-सा भी टूटेगा, रिश्वत लेना मुश्किल हो जाएगा, कठिन होता जाएगा और एक घड़ी आएगी कि पांच रुपए लेते वक्त अमूल्य ध्यान को छोड़ने की क्षमता न रह जाएगी, मुश्किल हो जाएगा। संन्यास इस बात की घोषणा है जगत के प्रति, और अपने प्रति भी, कि मैं अब परमात्मा की तरफ जाने का सचेतन निर्णय लेता हूं। निश्चित ही उस निर्णय को लेने के बाद उस यात्रा में जाने के लिए जो साधन है उसको करना आसान हो जाता है। इधर मैंने देखा है सैकड़ों व्यक्तियों को कि संन्यास लेते ही उनमें रूपांतरण हो जाता है। जब कुछ करेंगे तब की तो बात अलग, निर्णय लेते ही बहुत कुछ बदल जाता है। लेकिन यह लेना भी बहुत कुछ करना है। एक निर्णय पर पहुंचना, एक दांव लगाना, एक साहस जुटाना, एक छलांग की तैयारी भी छलांग है। आधी छलांग तो तैयारी में ही लग जाती है। तो निश्चित ही ध्यान की गहराई बढ़ेगी संन्यास से। संन्यास की गहराई बढ़ती है ध्यान से। वे अन्योन्याश्रित हैं।

नवसंन्यास क्या?

पत्र-पाथेय

पत्र-पाथेयः संन्यासियों के लिए
ओशो द्वारा नव-संन्यासियों को अंतःप्रेरणा एवं मार्गदर्शन हेतु लिखे
गए 39 अमृत-पत्र!

1 / वे इकट्ठे होंगे--जिनके लिए मैं आया हूं

प्रिय मधु,
प्रेम। "कम्यून" की खबर हृदय को पुलकित करती है।
बीज अंकुरित हो रहा है।
शीघ्र ही असंख्य आत्माएं उसके वृक्ष तले विश्राम पाएंगी।
वे लोग जल्दी ही इकट्ठे होंगे--जिनके लिए कि मैं आया हूं।
और तू उन सब की आतिथेय होने वाली है।
इसलिए, तैयार हो--अर्थात स्वयं को पूर्णतया शून्य कर ले।
क्योंकि, वह शून्यता ही आतिथेय, होस्ट बन सकती है।
और तू उस ओर चल पड़ी है--नाचती, गाती, आनंदमग्न।
जैसे सरिता सागर की ओर जाती है।
और मैं खुश हूं।
और सदा साथ हूं।
सागर निकट है--बस दौड़... और दौड़... और दौड़!

2 / संघर्ष, संकल्प और संन्यास

प्यारी मधु,
प्रेम। संघर्ष का शुभारंभ है।
और, उसमें तुझे धक्का देकर मैं अत्यंत आनंदित हूं।
संन्यास संसार को चुनौती है।
वह स्वतंत्रता की मौलिक घोषणा है।
पल-पल स्वतंत्रता में जीना ही संन्यास है।
असुरक्षा अब सदा तेरे साथ होगी, लेकिन वही जीवन का सत्य है।
सुरक्षा कहीं है नहीं--सिवाय मृत्यु के।
जीवन असुरक्षा है।
और यही उसकी पुलक है--यही उसका सौंदर्य है।
सुरक्षा की खोज ही आत्मघात है।
वह अपने ही हाथों, जीते-जी मरना है।
ऐसे मुर्दे चारों ओर हैं!
उन्होंने ही संसार को मरघट बना दिया है।
उनमें प्रतिष्ठित मुर्दे भी हैं।
इन सबको जगाना है, हालांकि वे सब जागे हुओं को भी सुलाने की चेष्टा करते हैं।
अब तो यह संघर्ष चलता ही रहेगा।
इसमें ही तेरे संपूर्ण संकल्प का जन्म होगा।
और मैं देख रहा हूं दूर--उस किनारे को जो कि तेरे संघर्ष की मंजिल है।

3 / संन्यासी बेटे का गौरव

प्रिय आनंदमूर्ति,
प्रेम। फौलाद के बनो--मिट्टी के होने से अब काम नहीं चलेगा।
संन्यासी होना प्रभु के सैनिक होना है।
माता-पिता की सेवा करो।

पहले से भी ज्यादा।
संन्यासी बेटे का आनंद उन्हें दो।
लेकिन, झुकना नहीं।
अपने संकल्प पर दृढ़ रहना।
इसी में परिवार का गौरव है।
जो बेटा संन्यास जैसे संकल्प में समझौता कर ले वह कुल के लिए कलंक है।
मैं आश्वस्त हूं तुम्हारे लिए।
इसीलिए तो तुम्हारे संन्यास का साक्षी बना हूं।
हंसो और सब झेलो।
हंसो और सब सुनो।
यही साधना है।
आंधियां आएंगी और चली जाएंगी।

4 / संन्यास की आत्मा हैः अडिग, अचल और अभय होना

प्रिय योग समाधि,
प्रेम। संन्यास गौरी-शंकर की यात्रा है।
चढ़ाई में कठिनाइयां तो हैं ही।
लेकिन दृढ़ संकल्प के मीठे फल भी हैं।
सब शांति और आनंद में झेलना।
लेकिन संकल्प नहीं छोड़ना।
मां की सेवा करना, पहले से भी ज्यादा।
संन्यास दायित्वों से भागने का नाम नहीं है।
परिवार नहीं छोड़ना है, वरन सारे संसार को ही परिवार बनाना है।
मां को भी संन्यास की दिशा में उन्मुख करना।
कहना उनसेः संसार की ओर बहुत देखा, अब प्रभु की ओर आंखें उठाओ।
और तेरी ओर से उन्हें कोई कष्ट न हो, इसका ध्यान रखना।
लेकिन इसका अर्थ झुकना या समझौता करना नहीं है।
संन्यास समझौता जानता ही नहीं है।
अडिग और अचल और अभय--यही संन्यास की आत्मा है।

5 / संन्यास जीवन का परम-भोग है

प्रिय योग प्रिया,
प्रेम। तेरे संन्यास से अत्यंत आनंदित हूं।
जिस जीवन (वृक्ष) में संन्यास के फूल न लगें, वह वृक्ष बांझ है।
क्योंकि, संन्यास ही परम जीवन-संगीत है।
संन्यास त्याग नहीं है।
वरन, वही जीवन का परम-भोग है।
निश्चय ही जो हीरे-मोती पा लेता है, उससे कंकड़-पत्थर छूट जाते हैं।
लेकिन, वह छोड़ना नहीं, छूटना है।

6 / संन्यास नया जन्म है

प्रिय योग यशा,
प्रेम। नये जन्म पर मेरे शुभाशीष।
संन्यास नया जन्म है।
स्वयं में, स्वयं से, स्वयं का।
वह मृत्यु भी है।
साधारण नहीं--महामृत्यु!
उस सब की जो तू कल तक थी।
और जो तू अब है, वह भी प्रतिपल मरता रहेगा।
ताकि, नया जन्मे--नया जन्मता ही रहे।

अब एक पल भी तू तू नहीं रह सकेगी।
मिटना है प्रतिपल और होना है प्रतिपल।
यही है साधना।
नदी की भांति जीना है।
सरोवर की भांति नहीं।
सरोवर गृहस्थ है।
सरिता संन्यासी है।

7 / संसार में संन्यास का प्रवेश

प्रिय प्रेम कृष्ण,
प्रेम। संन्यास की सुगंध को संसार तक पहुंचाना है।
धर्मों के कारागृहों ने संन्यास के फूल को भी विशाल दीवारों की ओट में कर लिया है।
इसलिए, अब संन्यासी को कहना है कि मैं किसी धर्म का नहीं हूं, क्योंकि समस्त धर्म ही मेरे हैं।
संन्यास को संसार से तोड़ कर भी बड़ी भूल हो गई है।
संसार से टूटा हुआ संन्यास रक्तहीन हो जाता है।
और संन्यास से टूटा हुआ संसार प्राणहीन।
इसलिए, दोनों के बीच पुनः सेतु निर्मित करने हैं।
संन्यास को रक्त देना है, और संसार को आत्मा देनी है।
संन्यास को संसार में लाना है।
अभय और असंग।
संसार में और फिर भी बाहर।
भीड़ में और फिर भी अकेला।
और संसार को भी संन्यास में ले जाना है।
अभय और असंग।
संन्यास में और फिर भी पलायन में नहीं।
संन्यास में और फिर भी संसार में।
तब ही वह स्वर्ण-सेतु निर्मित होगा जो कि दृश्य को अदृश्य से और आकार
को निराकार से जोड़ देता है।
लगो इस महत कार्य में।
बनो मजदूर इस सेतु के निर्माण में।

8 / संन्यास अर्थात जीवन का समग्र स्वीकार

प्रिय योग प्रेम,
प्रेम। भय छोड़।
क्योंकि भय को पकड़ा कि वह बढ़ा।
उसे पकड़ना ही उसे पानी देना है।
लेकिन, भय छोड़ने का अर्थ उससे लड़ना नहीं है।
लड़ना भी उसे पकड़ना ही है।
भय है--ऐसा जान।
उससे भाग मत, पलायन मत कर।
जीवन में भय है।
असुरक्षा है।
मृत्यु है।
ऐसा जान। ऐसा है।
यह सब जीवन का तथ्य है।
भागेंगे कहां?
बचेंगे कैसे?
जीवन ऐसा है ही।
इसकी स्वीकृति--इसका सहज अंगीकार ही भय से मुक्ति है।

भय स्वीकृत है तो फिर भय कहां है?
मृत्यु स्वीकृत है तो फिर मृत्यु कहां है?
असुरक्षा स्वीकृत है तो फिर असुरक्षा कहां है?
जीवन की समग्रता के स्वीकार को ही मैं संन्यास कहता हूं।

9 / संन्यास के संकल्प में अडिग रहो

प्रिय आनंदमूर्ति,
प्रेम। संकल्प के मार्ग में आती बाधाओं को प्रभु-प्रसाद समझना, क्योंकि उनके बिना संकल्प के प्रगाढ़ होने का और कोई उपाय नहीं है।
राह के पत्थर प्रज्ञावान के लिए, अवरोध नहीं, सीढ़ियां ही सिद्ध होती हैं।
अंततः, सब कुछ स्वयं पर ही निर्भर है।
अमृत जहर हो सकता है, और जहर अमृत हो सकता है।
फूल कांटों में छिपे हैं।
कांटों को देख कर जो भाग जाता है, वह व्यर्थ ही फूलों से वंचित रह जाता है।
हीरे खदानों में दबे हैं।
उनकी खोज में पहले तो कंकड़-पत्थर ही हाथ आते हैं।
लेकिन, उनसे निराश होना हीरों को सदा के लिए ही खोना है।
एक-एक पल कीमती है।
समय लौट कर नहीं आता है।
और खोये अवसर खोया जीवन बन जाते हैं।
अंधेरा जब घना हो तो जानना कि सूर्योदय निकट है।

10 / ईश्वर की पुकार से भर गए प्राणों में संन्यास का अवतरण

प्रिय धर्म ज्योति,
प्रेम। संन्यास उस चित्त में ही अवतरित होता है, जिसके लिए कि ईश्वर
ही सब कुछ है।
जहां ईश्वर सब कुछ है, वहां संसार अपने आप ही "कुछ नहीं" हो जाता है।
किसी फकीर के पास एक कंबल था।
उसे किसी ने चुरा लिया है।
फकीर उठा और पास के थाने में जाकर चोरी की रिपोर्ट लिखवाई।
उसने लिखवाया कि उसका तकिया, उसका गद्दा, उसका छाता, उसका पाजामा, उसका कोट और उसी तरह की बहुत सी चीजें चोरी चली गई हैं।
चोर भी उत्सुकतावश पीछे-पीछे थाने चला आया था।
सूची की इतनी लंबी-चौड़ी रूपरेखा देख कर वह मारे क्रोध के प्रकट हो गया
और थानेदार के सामने कंबल फेंक कर बोला--"बस यही, एक सड़ा-गला कंबल था! इसके बदले इसने संसार भर की चीजें लिखा डाली हैं!"
फकीर ने कंबल उठा कर कहा--"आह! बस यही तो मेरा संसार है!"
फकीर कंबल उठा कर चलने को उत्सुक हुआ तो थानेदार ने उसे रोका और कहा
कि रिपोर्ट में झूठी चीजें क्यों लिखाईं?
वह फकीर बोला--"नहीं, झूठ एक शब्द भी नहीं लिखाया है। देखिए! यही कंबल मेरे लिए सब कुछ है--यही मेरा तकिया है, यही गद्दा, यही छाता, यही पाजामा, यही कोट।"
बेशक, उसकी बात ठीक ही थी।
जिस दिन ईश्वर भी ऐसे ही सब कुछ हो जाता है--तकिया, गद्दा, छाता, पाजामा, कोट--उसी दिन संन्यास का अलौकिक फूल जीवन में खिलता है।

11 / संसार को अभिनय जानना ही संन्यास है

प्रिय योग प्रिया,

प्रेम। संन्यास में संसार अभिनय है।
संसार को अभिनय जानना ही संन्यास है।
फिर न कोई छोटा है, न बड़ा--न कोई राम है, न रावण।
फिर तो जो भी है सब रामलीला है!
जो मिले अभिनय उसे पूरा कर।
वह अभिनय तू नहीं है।
और जब तक अभिनय से हमारा तादात्म्य है, तब तक आत्मज्ञान असंभव है।
और जिस दिन यह तादात्म्य टूटता है उसी दिन से अज्ञान असंभव हो जाता है।
अभिनय कर और जान कि तू वह नहीं है।

12 / संन्यास सबसे बड़ा विद्रोह है

प्रिय कृष्ण कबीर,
प्रेम। संन्यास बड़ा से बड़ा विद्रोह है--संसार से, समाज से, सभ्यता से।
वह मूल्यों का मूल्यांतरण है।
वह स्वयं से स्वयं में और स्वयं के द्वारा क्रांति है।
इसलिए, अनेक प्रकार की कठिनाइयां सहनी होंगी।
विरोध होगा।
हंसी होगी।
लेकिन, उस सबके साक्षी बनना।
वह परीक्षा है।
और, उससे तुम निखरोगे और उज्ज्वल बनोगे।
उनका अनुग्रह मानना जो तुम्हें सताएं।
क्योंकि, वे ही तुम्हारे लिए परीक्षा का अवसर देंगे।
विनम्रता से सब सहना।
संतोष से सब स्वीकार करना।
और, तब तुम पाओगे कि इस जगत में शत्रु कोई भी नहीं है।
सिवाय स्वयं के अहंकार के।

13 / खिलना--संन्यास के फूल का

मेरे प्रिय,
प्रेम। जीवन में जो भी शुभ है, सुंदर है, सत्य है, संन्यास उन सबका समवेत संगीत है।
संन्यास के बिना जीवन में सुवास असंभव है।
जीवन अपने आप में जड़ों से ज्यादा नहीं है।
संन्यास का फूल जब तक न खिले तब तक जीवन अर्थ और आनंद और अहोभाव को उपलब्ध नहीं होता है।
और मैं यह जान कर अत्यधिक आनंदित हूं कि आत्म-क्रांति का वह अमूल्य क्षण तुम्हारे जीवन में आकर उपस्थित हो गया है।
तुम्हारी आंखों में उस क्षण को मैंने देखा है।
वैसे ही जैसे भोर में सूर्योदय के पूर्व आकाश लालिमा से भर जाता है, ऐसे ही संन्यास के पूर्व की लालिमा को मैंने तुम्हारे हृदय पर फैलते देखा है।
पक्षी स्वागत-गीत गा रहे हैं और सोए पौधे जाग रहे हैं।
अब देर उचित नहीं है।
ऐसे भी क्या काफी देर नहीं हो चुकी है?

14 / ध्यान, प्रेम और संन्यास का फूल

प्रिय कचु,
प्रेम। ध्यान का जल सींचते रहो।

संन्यास का फूल तो खिलेगा ही।
लेकिन, सतत प्रयास चाहिए।
हृदय की धड़कन-धड़कन में ध्यान का नाद भरना है।
संन्यास सरल है, लेकिन सस्ता नहीं है।
और सरल है, इसीलिए सस्ता नहीं है।
क्योंकि, जीवन में सरलता को पाना ही कठिनतम है।
मीरा ने कहा है--"अंसुअन जल सींचि-सींचि प्रेम बेलि बोई।"
मीरा के लिए प्रेम ही ध्यान है।
तुम्हारे लिए ध्यान ही प्रेम होगा।
ऐसे दोनों ही, एक ही सत्य के दो छोर हैं।

15 / संसार को लीला मात्र जानना संन्यास है

प्यारी हंसा,
प्रेम। संसार आनंदपूर्ण अभिनय बन जाए तो संन्यास फलित होता है।
संसार को बोझ रूप ढोना गार्हस्थ है।
संसार को लीला-मात्र जानना संन्यास है।
संन्यास संसार का विरोध नहीं है।
वरन संसार के प्रति दृष्टि का रूपांतरण है।
और सब कुछ--सुख-दुख, राग-द्वेष, यश-अपयश--सभी कुछ दृष्टि के बदलते ही बदल जाते हैं।
दृष्टि--जीवन को देखने का ढंग ही जीवन का आधार बन जाता है।
संन्यास विवाद भी नहीं है।
मेरे देखे तो संसार को संन्यास की दृष्टि से न देखने से ही विवाद उत्पन्न होता है।
संन्यास तो परम रस है--परम भोग है।
क्योंकि, संन्यास परमात्मा का साझीदार होना है।
लेकिन बहुत बार कंकड़-पत्थरों का मोह हीरों की खदान तक ही नहीं पहुंचने देता है।
पर तुझे मैं छोडूंगा नहीं।
हीरों की खदान निकट है और तुझे वहां तक पहुंचना ही है।

16 / संन्यास भी ध्यान का एक मार्ग है

मेरे प्रिय,
प्रेम। ध्यान के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।
या, जो भी मार्ग है, वे सब ध्यान (मेडिटेशन) के ही रूप हैं।
प्रार्थना भी ध्यान है।
पूजा भी।
उपासना भी।
योग भी ध्यान है।
सांख्य भी।
ज्ञान भी ध्यान है।
भक्ति भी।
कर्म भी ध्यान है।
संन्यास भी।
ध्यान का अर्थ है चित्त की मौन, निर्विचार, शुद्धावस्था।
कैसे पाते हो इस अवस्था को, यह महत्वपूर्ण नहीं है।
बस पा लो, यही महत्वपूर्ण है।
किस चिकित्सा-पद्धति से स्वस्थ होते हो, यह गौण है।
बस स्वस्थ हो जाओ, यही महत्वपूर्ण है।

17 / कोयले जैसी चेतना को हीरे जैसा बनाने की कीमिया है--संन्यास

प्रिय योग प्रेम,
प्रेम। नासमझी से वरदान भी अभिशाप हो जाते हैं।
और समझ से अभिशाप भी वरदान।
इसलिए, असली सवाल अभिशाप या वरदान का नहीं है; असली सवाल है उस कीमिया(अल्केमी) को जानने का, जो कि कांटों को फूल में रूपांतरित कर देती है।
कोयला ही रासायनिक प्रक्रिया से गुजर कर हीरा हो जाता है।
संन्यास कोयले जैसी चेतना को हीरे जैसा बनाने की ही प्रक्रिया है।
संन्यास के रसायन-शास्त्र का मूल सूत्र तुझे कहता हूं।
सीधा नहीं कहूंगा।
कहूंगा जरूर--लेकिन फिर भी तुझे उसे खोजना भी होगा।
क्योंकि, परोक्ष इशारा भी उस सूत्र की अभिव्यक्ति का अनिवार्य अंग है।
कुछ महामंत्र हैं, जो कि सीधे कहे ही नहीं जा सकते हैं।
या कहे जावें तो समझे नहीं जा सकते हैं।
या समझे भी जावें तो उनमें निहित काव्य खो जाता है।
और वह काव्य ही उनकी आत्मा है।
एकनाथ रोज भोर में गोदावरी में स्नान करने जाते थे।
वे स्नान करके लौटते तो एक व्यक्ति उन पर थूक देता, वे हंसते और पुनः स्नान कर आते।
धर्म के ठेकेदारों ने उस व्यक्ति को किराए पर रखा था।
लेकिन, एक शर्त थी कि एकनाथ क्रोधित हों तो ही उसे पुरस्कार मिल सकता था।
एक दिन--दो दिन--सप्ताह--दो सप्ताह--और उस व्यक्ति की मेहनत व्यर्थ ही
जा रही थी।
अंततः उसने आखिरी कोशिश की।
और एक दिन एकनाथ पर 107 बार थूका।
एकनाथ बार-बार हंसते और पुनः स्नान कर आते।
फिर उसने 107 वीं बार भी थूका।
एकनाथ हंसे और पुनः स्नान कर आए।
और फिर उसके पास आकर खड़े हो गए--इस आशा और प्रतीक्षा में कि शायद वह और
भी थूके।
लेकिन, वह गरीब बुरी तरह थक गया था।
थूकते-थूकते उसका मुंह भी सूख गया था।
एकनाथ ने थोड़ी देर प्रार्थनापूर्ण मन से प्रतीक्षा की और फिर बोलेः "किन शब्दों में तुम्हारा धन्यवाद करूं? मैं पहले गोदावरी की गोद का आनंद एक ही बार लेता था; फिर तुम्हारी सत्प्रेरणा से दो बार लेने लगा। और आज का तो कहना ही क्या है--108 बार गोदावरी-स्नान का पुण्य मिला है! श्रम तुम्हारा है, और फल मैं ले रहा हूं।"

18 / संन्यास की आत्मा--स्वतंत्रता में

प्रिय योग माया,
प्रेम। स्वतंत्रता से बहुमूल्य इस पृथ्वी पर कुछ और नहीं है।
उसकी गहराई में ही संन्यास है।
उसकी ऊंचाई में ही मोक्ष है।
लेकिन, सच्चे सिक्कों के साथ खोटे सिक्के भी तो चलते ही हैं।
शायद, साथ कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि खोटे सिक्के सच्चे सिक्कों के कारण ही चलते हैं।
उनके चलन का मूलाधार भी सच्चे सिक्के ही जो होते हैं।
असत्य को चलने के लिए सत्य होने का पाखंड रचना पड़ता है।
और बेईमानी को ईमानदारी के वस्त्र ओढ़ने पड़ते हैं।

परतंत्रताएं स्वतंत्रताओं के नारों से जीती हैं।
और, कारागृह मोक्ष के चित्रों से स्वयं की सजावट कर लेते हैं!
फिर भी सदा-सदैव के लिए धोखा असंभव है।
और आदमी तो आदमी, पशु भी धोखे को पहचान लेते हैं!
मैंने सुना है कि लंदन में एक अंतर्राष्ट्रीय कुत्ता-प्रदर्शनी हुई। उसमें आए रूसी कुत्ते ने अंग्रेज कुत्ते से पूछाः "यहां के हालचाल कैसे हैं साथी?"
उत्तर मिलाः "खास अच्छे नहीं। खाने-पीने की तंगी है। और नगर पर सदा ही धुंध छाई रहती है; जो मेरा गठिए का दर्द बढ़ा देती है। हां, मास्को में हालत कैसी है?"
रूसी कुत्ते ने कहाः "भोजन खूब मिलता है। चाहो जितना मांस, और चाहो जितनी हड्डियां। खाने की तो वहां बिल्कुल ही तंगी नहीं है।"
लेकिन फिर वह अगल-बगल झांक कर जरा नीची आवाज में कहने लगा, "मैं यहीं राजनीतिक आश्रय चाहता हूं। क्या तुम दया करके मेरी कुछ मदद कर सकोगे?" अंग्रेज कुत्ता स्वभावतः चकित होकर पूछने लगाः "मगर तुम यहां क्यों रहना चाहते हो; जब कि तुम ही कहते हो कि मास्को में हालत बड़ी अच्छी है?" उत्तर मिलाः "बात यह है कि मैं कभी-कभी जरा भौंक भी लेना चाहता हूं। कुत्ता हूं और वह भी रूसी, तो क्या हुआ, मेरी आत्मा भी स्वतंत्रता तो चाहती है।"

19 / संन्यास है कर्ता-मुक्त दृष्टि

प्रिय योग मूर्ति,
प्रेम। आह! क्या तुम्हें ऐसा लगता है कि "आए थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास"?
तब तुम न तो हरिभजन का ही अर्थ समझते हो, न ही कपास ओटने का।
जिसके लिए "कपास ओटने" के प्रति निंदा का भाव है, वह कहीं भी क्यों न जाए, कपास ही ओटेगा।
और जो "हरिभजन" को जीवन की समग्रता से तोड़ कर अलग-थलग देखता है, वह आज नहीं तो कल पाएगा ही कि कपास ओट रहा है।
हरिभजन और कपास ओटने में ऐसी कोई शत्रुता नहीं है।
पूछ देखो कबीर से या गोरा कुम्हार से।
जीवन की कला तो यही है कि कपास ओटने में भी हरिभजन हो और हरिभजन में भी कपास ओटा जा सके।
इसलिए तो मेरे लिए संन्यास संसार का विरोधी नहीं, वरन संसार को ही देखने का एक नया आयाम है।
संसार है कर्ता-ग्रसित दृष्टि।
संन्यास है कर्ता-मुक्त दृष्टि।
संसार है निद्रा--साक्षी की।
संन्यास है जागरण--साक्षी का।
कपास ओटो जागे हुए तो हरिभजन है
हरिभजन करो सोए हुए तो कपास ओटना है
कबीर ने इसे ही सहज समाधि कहा हैः "साधो, सहज समाधि भली।"

20 / संन्यास संकल्प नहीं, समर्पण है

मेरे प्रिय,
प्रेम। सोच-विचार कैसा?
क्षण का भी तो भरोसा नहीं है।
समय तो प्रतिपल हाथ से चुकता ही जाता है।
और मृत्यु न पूछ कर आती है।
न बता कर ही।
फिर संन्यास का अर्थ हैः सहज जीवन।

वह आरोपण नहीं; विपरीत समस्त आरोपणों से मुक्ति है।
संन्यास तुम्हारा निर्णय भी नहीं है।
वह तो तुमसे ही छुटकारा जो है।
संन्यास संकल्प नहीं, समर्पण है।

21 / मन है संन्यास का तो डूबो

मेरे प्रिय,
प्रेम। मन है संन्यास का तो डूबो।
फिर स्थगन ठीक नहीं।
प्रभु जब पुकारे तो चल पड़ो।
फिर रुकना नहीं।
क्योंकि, अवसर द्वार पर बार-बार आए कि न आए।

22 / संन्यास में छलांग

प्यारी सावित्री,
प्रेम। कब तक करेगी बाहर-भीतर का भेद?
शरीर और आत्मा का?
पदार्थ और परमात्मा का?
काफी किया--अब छोड़।
संन्यास न है बाहर से, न भीतर से।
संन्यास बाहर-भीतर का अभेद है।
और इसलिए कहीं से प्रारंभ कर--अंत सदा एक है।
असली बात है कि प्रारंभ कर और स्थगन न कर।

23 / ध्यान की गहराई के साथ ही संन्यास-चेतना का आगमन

मेरे प्रिय,
प्रेम। बहुमूल्य है तुम्हारा अनुभव।
जो चाहते थे, वही हुआ है।
द्वारा खुला है--जन्मों-जन्मों से बंद पड़ा द्वार।
इसलिए पीड़ा स्वाभाविक है।
नया जन्म हुआ है तुम्हारा।
इसलिए, प्रसव से गुजरना पड़ा है।
भय जरा भी मन में न लाना।
भय हो तो मेरा स्मरण करना।
स्मरण के साथ ही भय तिरोहित हो जाएगा।
मेरी आंखें सदा ही तुम्हारी ओर हैं।
जो भी सहायता आवश्यक होगी, वह तत्काल पहुंच जाएगी।
आनंद भी बाढ़ की भांति आ गया है।
उससे भी न घबड़ाना।
जब भी आनंद बढ़े तभी बस प्रभु को धन्यवाद देना और शांत रहना।
जब संन्यास का भाव बढ़ेगा।
उससे भी चिंतित मत होना।
अब तो संन्यास स्वयं ही आ जाएगा।
आ ही रहा है।
बादल तो घिर ही गए हैं।
बस, अब वर्षा होने को ही है।
और हृदय की धरती तो सदा से ही प्यासी है।

24 / संन्यास है--मन से मनातीत में यात्रा

प्रिय आनंद विजय,
प्रेम। संन्यास के लिए मन कैसे-कैसे बचाव खोज रहा था।
क्योंकि, संन्यास मन की मृत्यु जो है।
पर साहस किया तुमने--उठ सके मन के ऊपर।
तो जाना वह, जो कि परमानंद है।
मन है संसार।
मनातीत है सत्य।
संन्यास मन से मनातीत में यात्रा है।
अब जो पाया है उसकी खबर औरों तक भी पहुंचाओ।
जो जाना है उसे औरों को भी जनाओ।
अब तो तुम भी उपकरण हो गए प्रभु के।
अब उसे बोलने दो--तुम उसकी वाणी बनो।
अब उसे गाने दो--तुम उसकी बांसुरी बनो।

25 / संन्यास और गृहस्थी का मेल परमात्मा पर छोड़

प्यारी साधना,
प्रेम। पूछा है तूनेः "मनःस्थिति संन्यासी की और परिस्थिति गृहस्थी की--इनमें मेल कैसे करें?"
मेल तू करना ही नहीं--वह कठिन कार्य प्रभु पर ही छोड़!
क्योंकि, वह ऐसे मेल करने में कुशल भी है और अनुभवी भी।
संसार और स्वयं का भी उसने मेल किया है--शरीर और आत्मा का भी।
उसके लिए तो जैसे कहीं द्वंद्व है ही नहीं।
द्वंद्व अज्ञान में ही है।
ज्ञान में द्वंद्व नहीं है।
इसलिए अज्ञान में मेल बिठाना पड़ता है, फिर भी बैठता नहीं--बैठ सकता ही नहीं।
और ज्ञान में मेल बैठ ही जाता है, क्योंकि विपरीत संभव ही नहीं है।
तू मेल बिठाने में मत पड़ना--अन्यथा स्थिति और भी बेमेल हो जाएगी।
तू बेमेल को स्वीकार कर ले और प्रार्थनापूर्वक जीती चल।
फिर किसी दिन पाएगी कि बेमेल कहीं है ही नहीं।
स्वीकृति उसकी मृत्यु है।

26 / अंततः संन्यास का संकल्प

प्रिय सुमित्रा,
प्रेम। संन्यास का मन है तो मन से तो संन्यास ले ही लो।
बाह्य परिवर्तन की जब सुविधा मिले तब कर डालना।
स्वयं को संन्यास में ही जानो और उसी भांति जियो।
फिर जब परिवार और प्रियजनों को तुम्हारे जीवन-रूपांतरण की प्रतीति होगी तो वे भी बाधा नहीं बनेंगे।
अंततः तो वे भी तुम्हारे मंगल की ही कामना करते हैं न!

27 / संन्यास है रूपांतरण की कीमिया

प्रिय विजय मूर्ति,
प्रेम। संन्यास की कीमिया (अल्केमी) ऐसी ही है।
निर्णय लेते ही जीवन रूपांतरित होने लगता है।
निर्णय (डिसीजन) साधारण घटना नहीं है।
क्योंकि, संन्यास का निर्णय संकल्प भी है और समर्पण भी।
अब तुम वही नहीं हो जो कि संन्यास के पूर्व थे।
इसलिए, पुरानी आदतें अपने आप बिखर गई हैं तो आश्चर्य नहीं है।

असल में उनके संगठन का पुराना केंद्र ही जब टूट गया है तो उनके बचे रहने का कोई भी उपाय नहीं है।

28 / नव-संन्यास को समझने में पुरानी धारणाओं की कठिनाइयां

प्यारी धर्म सरस्वती,
प्रेम। संन्यास के संबंध में पुरानी धारणाओं के कारण प्रियजनों को समझने में कठिनाई होती है, जो कि स्वाभाविक है।
लेकिन उससे चिंता में न पड़।
हां--उन्हें संन्यास की नयी दृष्टि को सादर समझाने की कोशिश जरूर कर।
जो तुझे प्रेम करते हैं, वे निश्चय ही तेरी स्थिति को समझ सकेंगे।
और तू उनकी शुभकामनाएं भी पा सकेगी।
संकल्प को तो पूरा करना है।
साधना को तो सिद्धि तक पहुंचाना ही है।
निश्चय ही मार्ग में अनेक बाधाएं आएंगी, उन्हें भी साधना में सहयोगी बनाना है।
प्रभु के प्रति समग्र समर्पण से आगे बढ़ और चिंताएं उस पर ही छोड़ दे।

29 / संन्यास है--जीवन को उत्सव बना लेने की कला

प्रिय भक्ति वेदांत,
प्रेम। प्रभु से उसके समस्त रूपों में प्रेम ही प्रार्थना है।
जहां देखो--उसे ही देखो।
जो सुनो--उसमें उसे ही सुनो।
फिर जीवन--मात्र जीना ही उत्सव हो जाता है।
जीवन को उत्सव--बेशर्त उत्सव बना लेने की कला ही संन्यास है।

30 / स्वयं की खोज ही संन्यास है

प्रिय योग उमा,
प्रेम। भूलो बाहर को और डूबो प्रभु में।
बाहर दुख है।
और नरक है।
भीतर और केवल भीतर ही सुख है।
या, स्वर्ग है।
खोजो स्वयं में ही उस बिंदु को जिसके कि पार और भीतर नहीं है।
यही खोज संन्यास है।
संन्यास में, परिस्थिति की बदलाहट संन्यास नहीं है।
परिस्थिति नहीं--मनःस्थिति बदलनी है।

31 / संसार और संन्यास में द्वैत नहीं है

प्रिय अगेह भारती,
प्रेम। बाह्य और अंतस में समस्वरता लाओ।
पदार्थ और परमात्मा में विरोध नहीं है।
घर और मंदिर को दो जाना कि उलझे।
संसार और संन्यास में द्वैत नहीं है।
एक को ही देखो दसों दिशाओं में।
एक को ही जीओ श्वास-प्रश्वास में।
क्योंकि, एक ही है।
लहरों की अनेकता भ्रम है।
सागर का ऐक्य ही सत्य है।

32 / नया नाम--पुराने से तादात्म्य तोड़ने के लिए

प्रिय योग संबोधि,
प्रेम। नया दिया है नाम तुझे--नये व्यक्तित्व के जन्म के लिए।
पुराने से तादात्म्य टूटे--शृंखला विशृंखल हो इसलिए।
अंतराल पड़े बीच में--अलंघ्य खाई निर्मित हो इस आशा में।
भूल जा जो थी--भूल जा उसे जो स्वप्न की भांति आया और जा चुका है।
और स्मरण कर उसका जो सदा है--सनातन और नित नवीन।
चिर नूतन को पहचान।
यद्यपि वही अनादि भी है।

33 / संन्यासी जाएंगे अमृत संदेश बांटने

प्यारी योग तरु,
प्रेम। निश्चय ही संदेश को उन सब तक पहुंचाना ही होगा जो कि प्यासे हैं और प्रतीक्षा में हैं।
और बहुत हैं जो कि प्यासे हैं और प्रतीक्षा में हैं।
ऐसे ही जैसे कि चातक स्वाति-नक्षत्र की बाट जोहता है।
और वे प्यासे लोग पृथ्वी के कोने-कोने में हैं।
तुम्हें अमृत की खबर लेकर उन तक जाना होगा।
सब सीमाएं तोड़कर--सब सरहदों के पार।
उस महाकार्य के लिए ही तो तुम संन्यासियों-संन्यासिनियों को निर्मित
कर रहा हूं।
मनुष्य की चेतना में एक बड़ी उत्क्रांति की घड़ी निकट है और मैं उसकी ही पूर्व तैयारी में लगा हूं।

34 / गैरिक वस्त्र साधक के लिए मंगलदायी

प्रिय दिनेश भारती,
प्रेम। जब तक शरीर-भाव आमूल तिरोहित नहीं होता है तब तक वस्त्रों का
भी मूल्य है।
गैरिक वस्त्र उस रंग के निकटतम हैं जो कि शरीर-भाव से अशरीर-भाव में प्रवेश करते समय प्रकट होता है।
उनकी उपस्थिति साधक के लिए मंगलदायी है।
रंग, ध्वनि, गंध, सभी का चित्त-दशाओं से संबंध है।
प्रत्येक का आघात भिन्न है और भिन्न तरंग-जालों का स्रोत है।
अस्तित्व में जो क्षुद्रतम प्रतीत होता है वह भी विराटतम से अनंत रूपों से संबद्ध है।
पदार्थ-परमाणु (एटम) में विज्ञान ने अनंत ऊर्जा का उदघाटन किया है।
वह सभी आयामों में सत्य है।

35 / नव-संन्यास आंदोलन का महत कार्य

प्यारी योग तरु,
प्रेम। निश्चय ही जो मुझे कहना है वह कहा नहीं जा सकता है।
और जो कहा जा सकता है वह मुझे कहना नहीं है।
इसलिए ही तो इशारों से कहता हूं--शब्दों के बीच छोड़े अंतरालों से कहता हूं।
विरोधाभासों (पैराडाक्सेज) से कहता हूं या कभी न कह कर भी कहता हूं।
धीरे-धीरे इन संकेतों को समझनेवाले भी तैयार होते जा रहे हैं और न समझनेवाले दूर हटते जा रहे हैं--इससे काम में बड़ी सुविधा होगी।
नव-संन्यास आंदोलन से इन संकेतों के बीज पृथ्वी के कोने-कोने तक पहुंचा देने हैं।

और हजार फेंके गए बीजों में यदि एक भी अंकुरित हो जाए तो यह रिकार्ड तोड़ सफलता है।

36 / संन्यास के संस्कार--पिछले जन्मों के

मेरे प्रिय,
प्रेम। तुम्हारा यह लगना ठीक ही है कि जैसे मैं चौबीस घंटे तुम्हारे साथ हूं।
हूं ही।
बदलना है तुम्हें।
नया जन्म देना है तुम्हें।
तो तुम्हारा पीछा करना ही पड़ेगा न?
प्रभु के सैनिक तो तुम हो ही--बस वर्दी पहन कर पंक्ति में खड़े भर हो जाने की देर है।
और वह भी शीघ्र ही हो जाएगा।
तुम्हारी नियति की रेखाएं बहुत साफ हैं और तुम्हारे संबंध में आश्वासनपूर्वक भविष्यवाणी की जा सकती है।
विगत दो जन्मों के तुम्हारे संस्कार भी संन्यासी के हैं--तुम्हारी हड्डियां, तुम्हारे मांस, तुम्हारी मज्जा में फकीरी की गहरी छाप है।
अब जो बीज है उसे वृक्ष बनाना है और जो संभावना है उसे सत्य करना है।
और मैं एक माली की भांति तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं।

37 / प्रभु के द्वार पर कोई भी अपात्र नहीं है

प्यारी साधना,
प्रेम। प्रभु के द्वार पर कोई भी अपात्र नहीं है।
लेकिन, उन अभागों के लिए क्या कहा जाए जो कि उसके द्वार की ओर पीठ किए
ही खड़े रहते हैं।
और कभी-कभी जब द्वार ही उनके सामने आ जाता है तब भी वे आंखें बंद कर लेते हैं!
अपात्र तो तू है ही नहीं; क्योंकि अपात्र कोई भी नहीं है।
और अभागी भी नहीं है।
द्वार तेरे सामने है--नाच, गा और प्रवेश कर।
धर्म है एक उत्सव।
गंभीर, उदास और रुग्ण चेहरों की वहां कोई भी गति नहीं है।

38 / सहजता ही संन्यास है

प्रिय आनंद आलोक,
प्रेम। सहजता ही संन्यास है।
सहज बहो--जैसे तिनका बहता है सरिता में।
तैरे कि डूबे।
बचाया स्वयं को कि मिटे।

39 / संन्यास, प्यास और स्वयं का दांव

मेरे प्रिय,
प्रेम! नहीं--प्यासे नहीं रहोगे।
देर है--अंधेर नहीं।
और देर भी है तो स्वयं ही के कारण।
प्यास पकेगी तब ही तो कुछ होगा?
फिर कच्ची प्यास को छेड़ना उचित भी नहीं है।
पकने दो प्यास को।

गहन होने दो--तीव्र होने दो।
झेलो पकने की पीड़ा।
झेलनी ही पड़ती है, क्योंकि निर्मूल्य कुछ भी नहीं है।
मूल्य चुकाओ।
गुजरो जीवन से।
दुख से--संताप से।
नरकों से--स्वर्गों की आशा में।
बनाओ भवन ताशों के--क्योंकि और किसी प्रकार के भवन पृथ्वी पर बनते ही नहीं हैं!
और हवा के झोंके जब उन्हें गिरा दें--तो रोओ।
टूटो और स्वयं भी उनके साथ गिरो।
तैराओ नावें कागजों की महासागरों में--क्योंकि आदमी और किसी भांति की नावें बनाने में समर्थ ही नहीं है।
और फिर जब लहरों के थपेड़े उन्हें डुबा दें--तो पछताओ जैसे कि सुखद-स्वप्न टूट जाएं तो कोई भी पछताता है।
और ऐसे ही यात्रा होगी।
और ऐसे ही अनुभव शिक्षा देंगे।
और ऐसे ही ज्ञान जगेगा।
और पकेगी प्यास।
और तुम स्वयं को दांव पर लगा उसे खोजोगे जो कि समस्त प्यासों के पार
ले जाता है।
वह तो निकट ही है--बस तुम्हारी ही स्वयं को दांव पर लगाने की देर है।